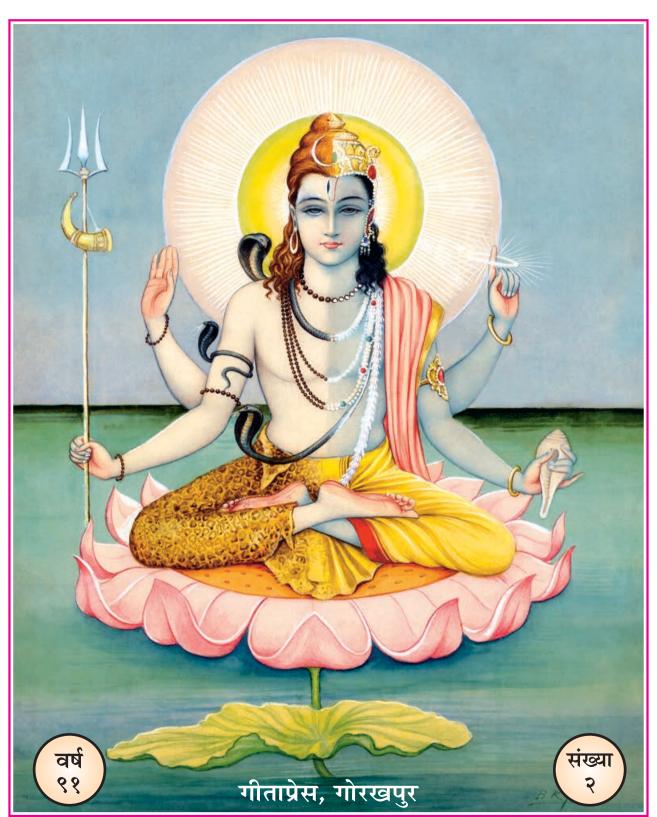
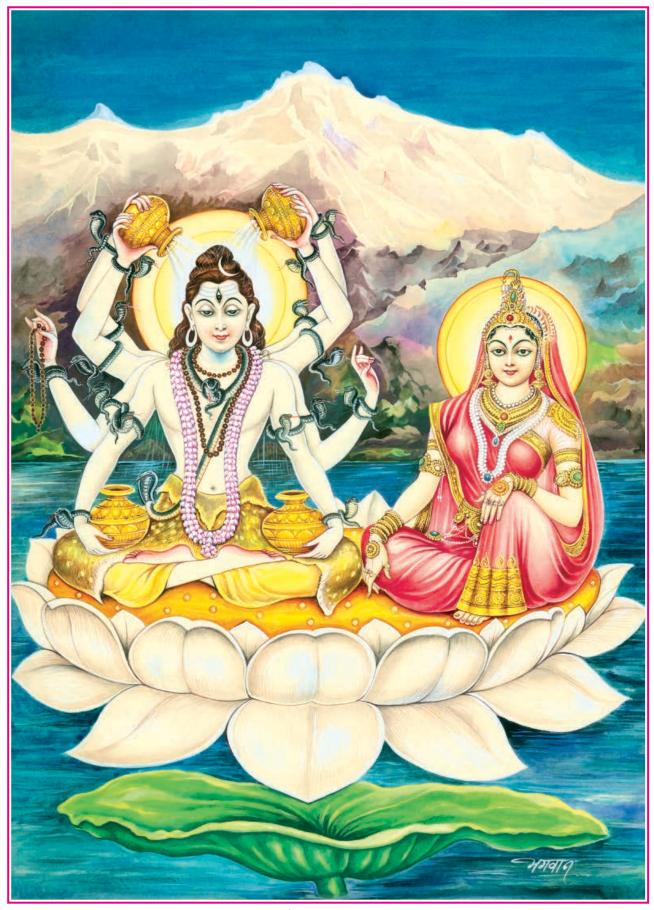
कल्याण



भगवान् श्रीहरिहर



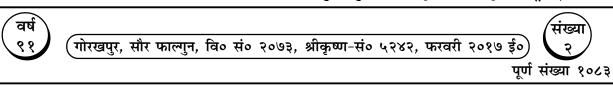


उमासहित भगवान् मृत्युंजय

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्येकवासं शिवम्। सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥



श्रीमृत्युञ्जयशिव-ध्यान

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धत्य तोयं शिरः सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ। 泺 枈 मूर्धस्थचन्द्रस्रव-अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं 泺 釆 त्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्॥ जो अपने दो करकमलोंमें रखे हुए दो कलशोंसे जल निकालकर उनसे 釆 釆 * * ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा अपने मस्तकको सींचते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो घड़े 乐 釆 लिये उन्हें अपनी गोदमें रखे हुए हैं तथा शेष दो हाथोंमें रुद्राक्ष एवं मृगमुद्रा * * धारण करते हैं, कमलके आसनपर बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर 釆 * * झरते हए अमृतसे जिनका सारा शरीर भींगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र धारण 釆 釆 करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युंजयका, जिनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी * विराजमान हैं, मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ। [श्रवपुराण-सतीखण्ड] 釆

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७३,	श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, फरवरी २०१७ ई०	
विषय-सूची		
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ठ-संख्या	
२- कल्याण	१६- श्रीशिवसूक्तिः [श्रीपूर्णचन्द्रकृत उद्भटसागर]	
(श्रद्धेय पं॰ श्रीलालबिहारीजी मिश्र)२२ १४- काशीमें गंगालाभसे मुक्ति (श्रीसत्यजी ठाकुर)२६	२७- पढ़ो, समझो और करो४५ २८- मनन करने योग्य५०	
———• चित्र	9⊚ -सूची	
१ - भगवान् श्रीहरिहर	गीन) आवरण-पृष्ठ ››) मुख-पृष्ठ करंगा) ६	
जिय पावक रवि चन्द्र जयित जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥		
् एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२० विदेशमें Air Mail वार्षिक US	। जय हर अखिलात्मन् जय जय।। । गौरीपति जय रमापते।। \$ 50 (₹3000) {Us Cheque Collection \$ 250 (₹15,000) {Charges 6\$ Extra	
आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सह	द्वेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ ह लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित	
website: gitapress.org e-mail: kaly	an@gitapress.org 09235400242/244	

संख्या २] कल्याण याद रखो-प्रतिध्वनि ध्वनिका ही अनुसरण विशाल वृक्षकी जड़ जमाना है। मनुष्य जब एक बार पापको स्वीकार करके उसमें फँस जाता है तो फिर वह करती है और ठीक उसीके अनुरूप होती है, इसी प्रकार दूसरोंसे हमें वही मिलता है और वैसा ही मिलता है, दिनोंदिन उसीमें लिपटता ही चला जाता है और आगे जैसा हम उनको देते हैं। अवश्य ही, वह मिलता है चलकर उसीके संगमें सुखका-यहाँतक कि कर्तव्यका बीज-फल-न्यायके अनुसार कई गुना बढकर! अनुभव करने लगता है। उसके पापोंकी एक ऐसी दृढ़ और मोहक शृंखला बन जाती है, जिसके बन्धनसे वह याद रखो-सुख चाहते हो, दूसरोंको सुख दो; मान चाहते हो, मान प्रदान करो; हित चाहते हो, हित सहज ही कभी छूट नहीं सकता और उसके नये-नये करो; और बुराई चाहते हो तो बुराई करो। याद रखो रूपोंपर मोहित होता रहता है। जैसा बीज बोओगे वैसा ही फल मिलेगा। फलकी याद रखो-पाप करते समय अज्ञानवश सुखका न्युनाधिकता जमीनके अनुसार होगी। बोध होता है। उस समय परिणाम सामने नहीं होता. परंतु परम्परासे चली आयी हुई परिणामकी एक कल्पना याद रखो-हिंसापरायण लोग अपनी हिंसाके फलसे स्वयं नष्ट हो जाते हैं और जो साधू-स्वभावके मनमें होती है, जो पापकर्मका सम्पादन करनेके बाद उसे धिक्कारती और डराती है, परंतु पाप करते-करते लोग हैं, वे अपनी साधुताके परिणामस्वरूप समस्त पापोंसे छूट जाते हैं। हिंसा हिंसकको खा जाती है और वह कल्पना भी मिट जाती है और पापमें ही गौरव-बृद्धि हो जाती है। फिर उसकी बृद्धि सहज ही पुण्यको साधुता पापकी प्रचण्ड अग्निसे साधुको बचा लेती है। पाप और पापको पुण्य देखती है। मनुष्यकी यह स्थिति याद रखो — हिंसासे साधुताकी तुलना वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे जहरसे अमृतकी। साधु पुरुष जैसे बहुत ही निराशाजनक होती है। इसलिये निरन्तर पापियोंके संगसे बचना और अपने स्वाभाविक आचरणोंसे जगत्में प्रेम, करुणा, क्षमा और एकात्मताका विस्तार किया करते हैं, वैसे ही साधुओंके संगमें रचना-पचना चाहिये। बुद्धिके विपरीत हिंसक मनुष्य वैर, निर्दयता, क्रोध और अनात्मीयताका निर्णयसे, सम्भव है एक बार इसमें प्रत्यक्ष हानि प्रसार करते हैं। दिखलायी दे; परंतु यह निश्चय है कि पापात्माओं के हिंसकोंसे इस जगत्में दु:ख बढ़ता है और परलोक संगका परिणाम दु:ख और साधुओंके संगका परिणाम बिगडता है; दूसरी ओर साधुओंसे जगतुमें सुख-शान्ति सुख अनिवार्य है। साधु-संगका महत्त्व समझनेके बाद फैलती है और परलोक तो बनता ही है। साधुताका फल बननेवाला साध-संग तो इतना विलक्षण होता है कि देरसे भले ही हो, पर होता है अमृतमय। उससे दु:ख-बीजका सर्वथा नाश और सात्वत— *याद रखो*—मनुष्यको पापसे सदा सावधान आत्यन्तिक सुखकी सहज प्राप्ति हो सकती है। रहना चाहिये। जरासे पापको भी सहन करना पापके 'शिव'

आवरणचित्र-परिचय

भगवान् श्रीहरिहर



करनेके बाद जगत्के अशान्त होनेका कारण पूछा। भगवान् विष्णुने उनके प्रश्नको सुनकर कहा—हम सभी लोग शिवजीके पास चलें। वे महान् ज्ञानी हैं। इस चराचर जगत्के व्याकुल होनेका कारण वे जानते होंगे। वासुदेवके ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि देवगण जनार्दन भगवान्को आगे

करके मन्दरपर्वतपर गये। किंतु वहाँ उन्होंने न तो महादेवको देखा, न देवी पार्वती और न नन्दीको ही। अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए उन लोगोंने पर्वतको देवशून्य देखा। तब विष्णुने दर्शन प्राप्त न होनेके कारण सकपकाये हुए देवोंको देखकर कहा—क्या आपलोग सामने स्थित महादेवको नहीं देख रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—हाँ, हमलोग गिरिजापित देवेशको नहीं देख रहे हैं। हमलोग उस कारणको नहीं जानते. जिससे हमारी देखनेकी शक्ति नष्ट हो गयी।

जगन्मृर्ति विष्णुने उनसे कहा—आपलोग मृडानीका गर्भ नष्ट करनेके कारण महापापसे ग्रस्त हो गये हैं, इसलिये शुलपाणि महादेवने आपलोगोंके सम्यक् अवबोधको और विचारशक्तिको अपहृत कर लिया है। इस कारण आप सब सामने स्थित शंकरको देखकर भी

नहीं देख रहे हैं। अत: सब लोग विश्वासके साथ

तप्तकृच्छ्र-व्रतद्वारा पावन होकर स्नान करें और महादेवको दूधसे स्नान करानेके लिये डेढ़ सौ घड़ोंका प्रयोग करें। इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि देवताओंने शरीरकी शुद्धिके लिये तप्तकृच्छुव्रतका एकान्त अनुष्ठान किया।

उसके बाद पापसे छूटकर देवताओंने कहा-जगन्नाथ! केशव ! आप कृपया यह बतलाइये कि शम्भु किस स्थानपर अवस्थित हैं? जिन्हें हमलोग दूध आदिके अभिषेकसे विधिपूर्वक स्नान करायें। उसके बाद विष्णुने देवताओंसे कहा—देवताओ! मेरे शरीरमें ये शंकर संयुक्त होकर स्थित

हैं। क्या आपलोग नहीं देख रहे हैं? उन लोगोंने विष्णुसे कहा कि हमलोग तो आपमें त्रिपुरनाशक शंकरको नहीं देख रहे हैं। सुरेशान! आप

विष्णुने देवताओंको अपने हृदयकमलमें विश्राम करनेवाले शंकरके लिंगका दर्शन करा दिया। उसके बाद देवताओंने क्रमशः दुध आदिसे उस नित्य, स्थिर एवं अक्षय लिंगको स्नान कराया। फिर उन लोगोंने गोरोचन और सुगन्धित चन्दनका लेपनकर बिल्वपत्रों और कमलोंसे भक्तिपूर्वक उन देवकी पूजा की। फिर शंकरके एक सौ आठ नामोंका

जप करनेके बाद उन्हें प्रणाम किया। सभी देवता यह

विचारने लगे कि सत्त्वगुणकी प्रधानतासे विष्णु एवं तमोगुणकी

अधिकतासे आविर्भृत शिवमें एकता किस प्रकार हुई? देवताओंके विचारको जानकर अविनाशी व्यापक भगवान्

सच बतलाइये कि महेश किस स्थानपर स्थित हैं? तब

विश्वमूर्ति हो गये। फिर तो देवताओंने एक ही शरीरमें कानमें सर्पके कुण्डल पहने; सिरपर आपसमें चिपके लम्बे बालके जटाजूट बाँधे; गलेमें सर्पके हार लटकाये; हाथमें पिनाक, शूल, आजगव धनुष, खट्वांग धारण किये तथा घण्टासे युक्त बाघाम्बर धारण करनेवाले त्रिनेत्रधारी वृषध्वज

हार और पीताम्बर पहने; हाथोंमें चक्र, असि, हल, शार्ङ्गधनुष, टंकार-सी ध्वनि करनेवाले शंखको लिये गुडाकेश विष्णुको देखा। उसके बाद 'सर्वव्यापी अविनाशी प्रभुको नमस्कार

महादेव और साथ ही कमलके कुण्डलधारी; गरुडध्वज;

है'—इस प्रकार कहकर ब्रह्मा आदि देवताओंने उन हरि शरीरकी पवित्रता और देवका दुर्शन पाप्त करनेके लिये एवं शंकरको एकरूप (अभिन्न) समझा [श्रीवामनपूराण] Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha शिव-तत्त्व

शिव-तत्त्व

इसका क्या हेतु है?

शाक्तपुराणोंमें देवीसे सुष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है-इसका क्या कारण है? एक ही पुरुषद्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणोंमें एक ही खास विषयमें इतना भेद क्यों ? सृष्टिके विषयमें ही नहीं, इतिहासों और कथाओंका भी पुराणोंमें कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है।

इस प्रश्नपर मूल तत्त्वकी ओर लक्ष्य रखकर

गम्भीरताके साथ विचार करनेपर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रममें भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास-पुराणोंके वर्णनमें एवं योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रोंके रचियता ऋषियोंके कथनमें भेद

रहनेपर भी वस्तुत: मूल सिद्धान्तमें कोई खास भेद नहीं

है; क्योंकि प्राय: सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदिमें प्रकृति-पुरुषसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाते हैं। वर्णनमें

भेद होने अथवा भेद प्रतीत होनेके निम्नलिखित कई

आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं

रहता; क्योंकि वेद, शास्त्र और पुराणोंमें भिन्न-भिन्न सर्ग और महासर्गोंका वर्णन है, इससे वर्णनमें भेद होना

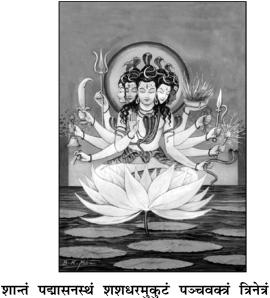
क्रममें भेद रहता है। ग्रन्थोंमें कहीं महासर्गका वर्णन है

तो कहीं सर्गका, इससे भी भेद हो जाता है।

१-मूल-तत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्गके

२-महासर्ग और सर्गके आदिमें भी उत्पत्त-

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) शिवसे, वैष्णवपुराणोंमें विष्णु, कृष्ण या रामसे और



संख्या २]

शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम्। नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्कशं वामभागे नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥*

व्यक्तिका इस तत्त्वपर कुछ लिखना एक प्रकारसे लड़कपनके समान है। परंतु इसी बहाने उस विज्ञानानन्दघन

शिव-तत्त्व बहुत ही गहन है। मुझ-सरीखे साधारण

महेश्वरकी चर्चा हो जायगी, यह समझकर अपने मनोविनोदके लिये कुछ लिख रहा हूँ। विद्वान् महानुभाव क्षमा करें।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन मिलता है। इसपर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियोंके

पृथक्-पृथक् मत होनेके कारण उनके वर्णनमें भेद होना

उत्पत्तिके वर्णनमें विभिन्तता ही पायी जाती है। शैवपुराणोंमें

नमस्कार करता हुँ।

सम्भव है; परंतु पुराण तो अठारहों एक ही महर्षि वेदव्यासके रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टिकी

कारण है। * जो शान्तस्वरूप हैं, कमलके आसनपर विराजमान हैं, मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख हैं, तीन नेत्र

कारण हैं—

स्वाभाविक है।

३—प्रत्येक सर्गके आदिमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिका

क्रम सदा एक-सा नहीं रहता, यह भी भेद होनेका एक

हैं, जो अपने दाहिने भागकी भुजाओंमें शूल, वज्र, खड्ग, परशु और अभयमुद्रा धारण करते हैं तथा वामभागकी भुजाओंमें सर्प, पाश, घण्टा,

प्रलयाग्नि और अंकुश धारण किये रहते हैं, उन नाना अलंकारोंसे विभूषित एवं स्फटिकमणिके समान श्वेतवर्ण भगवान् पार्वतीपतिको मैं

भाग ९१ ४—सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारके क्रमका वेदोक्त देवताओंको ईश्वरत्व देकर भिन्न-भिन्न पुराणोंमें रहस्य बहुत ही सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, इसे समझानेके भिन्न-भिन्न देवताओंसे भिन्न-भिन्न भाँतिसे सृष्टिकी लिये नाना प्रकारके रूपकोंसे उदाहरण-वाक्योंद्वारा नामरूप उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम बतलाया गया है। बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे सुष्टिकी उत्पत्ति आदिका जीवोंपर महर्षि वेदव्यासजीकी परम कृपा है। उन्होंने रहस्य बतलानेकी चेष्टा की गयी है। इस तात्पर्यको न सबके लिये परमधाम पहुँचनेका मार्ग सरल कर दिया। समझनेके कारण भी एक-दूसरे ग्रन्थके वर्णनमें विशेष पुराणोंमें यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवानुके भेद प्रतीत होता है। जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसीको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार,

ये तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें वेद-शास्त्रोंमें भेद होनेके कारण हैं। अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार करना है। पुराणोंकी रचना महर्षि वेदव्यासजीने की। वेदव्यासजी महाराज बड़े भारी तत्त्वदर्शी विद्वान् और सृष्टिके समस्त रहस्यको जाननेवाले महापुरुष थे। उन्होंने देखा कि वेद-शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्मके अनेक नामोंका वर्णन होनेसे वास्तविक रहस्यको न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धिकी विचित्रताके कारण मनुष्य इन भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले

एक ही परमात्माको अनेक मानने लगे हैं और नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार होनेसे असली तत्त्वका लक्ष्य छृट गया है। इस अवस्थामें उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्यकी ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्गपर लानेके लिये एवं श्रुति, स्मृति आदिका रहस्य स्त्री, शूद्रादि अल्पबुद्धिवाले

मनुष्योंको समझानेके लिये उन सबके परम हितके उद्देश्यसे पुराणोंकी रचना की। पुराणोंकी रचनाशैली देखनेसे प्रतीत होता है कि महर्षि वेदव्यासजीने उनमें इस प्रकारके वर्णन, उपदेश और आदेश किये हैं, जिनके प्रभावसे परमेश्वरके नाना प्रकारके नाम और रूपोंको देखकर भी मनुष्य प्रमाद, लोभ और मोहके वशीभृत हो सन्मार्गका त्याग करके मार्गान्तरमें नहीं जा सकते। वे

नहीं। सब उसीका लीला-विस्तार या विभूति है। विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति

आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि, अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि, सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादन करते हैं। वस्तुत: मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है; क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील किसी भी नाम-रूपसे परमेश्वरकी उपासना करते हुए ही होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं सन्मार्गपर आरूढ़ रह सकते हैं। बुद्धि और रुचि-ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका वैचित्र्यके कारण संसारमें विभिन्न प्रकारके देवताओंकी अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानीका भाव उपासना करनेवाले जनसमुदायको एक ही सूत्रमें बाँधकर ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये।[क्रमशः] उन्हें सन्मार्गपर लगा देनेके उद्देश्यसे ही शास्त्र और

विज्ञानानन्दघन परमात्मा माने और उसीको सृष्टिकी

उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु,

महेशके रूपमें प्रकट होकर क्रिया करनेवाला समझे।

उपासकके लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और

सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेवसे बढ़कर और कोई है ही

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य,

शिवसे शिक्षा संख्या २] शिवसे शिक्षा (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) भगवान् भूतभावन श्रीविश्वनाथके चरित्रोंसे प्राणियोंको सुख तथा शान्तिसे रहते हैं। घर में प्राय: विचित्र स्वभाव नैतिक, सामाजिक, कौटुम्बिक—अनेक प्रकारकी शिक्षा और रुचिके लोग रहते हैं, जिसके कारण आपसमें खटपट मिलती है। समुद्र-मन्थनमें निकलनेवाले कालकूट विषका चलती ही रहती है। घरकी शान्तिके आदर्शकी शिक्षा भी भगवान् शंकरने पान किया और अमृत देवताओंको शिवसे ही मिलती है। भगवान् शिव और अन्नपूर्णा अपने-दिया। राष्ट्रके नेता और समाज एवं कुटुम्बके स्वामीका आप परम विरक्त रहकर संसारका सब ऐश्वर्य श्रीविष्णु यही कर्तव्य है, उत्तम वस्तु राष्ट्रके अन्यान्य लोगोंको और लक्ष्मीको अर्पण कर देते हैं। श्रीलक्ष्मी और विष्णु भी देनी चाहिये और अपने लिये परिश्रम, त्याग तथा तरह-संसारके सभी कार्योंको सँभालने, सुधारनेके लिये अपने-तरहकी कठिनाइयोंको ही रखना चाहिये। विषका भाग आप ही अवतीर्ण होते हैं। गौरी-शंकरको कुछ भी परिश्रम राष्ट्र या बच्चोंको देनेसे वैमनस्य और उससे सर्वनाश हो न देकर आत्मानुसन्धानके लिये उन्हें निष्प्रपंच रहने देते जायगा। शिवजीने न विषको हृदय (पेट)-में उतारा हैं। ऐसे ही कुटुम्ब और समाजके सर्वमान्य पुरुषोंको चाहिये और न उसका वमन ही किया, अपितु कण्ठमें ही रोक कि योग्यतम कुटुम्बियोंके हाथ समाज और कुटुम्बका सब रखा। इसीलिये विष और कालिमा भी उनके भूषण हो ऐश्वर्य दे दें और उन योग्य अधिकारियोंको चाहिये कि गये। जो संसारके हितके लिये विषपानसे भी नहीं समाजके प्रत्येक कार्य-सम्पादनके लिये स्वयं ही अग्रसर हिचकते, वे ही राष्ट्र या जगत्के ईश्वर हो सकते हैं। हों, वृद्धोंको निष्प्रपंच होकर आत्मानुसन्धान करने दें। समाज या राष्ट्रकी कट्ताको पी जानेसे ही नेता महापार्थिवेश्वर हिमालयकी महाशक्तिरूपा पुत्रीका राष्ट्रका कल्याण कर सकता है। परंतु फिर भी उस श्रीशिवके साथ परिणय होनेसे ही विश्वका कल्याण हो कटुताका विष वमन करनेसे फूट और उपद्रव ही होगा। सकता है। किसी प्रकारकी भी शक्ति क्यों न हो, जब-साथ ही उस विषको हृदयमें रखना भी बुरा है। अमृत-तक वह धर्मसे परिणीत—संयुक्त नहीं होती, तबतक पानके लिये सभी उत्सुक होते हैं, परंतु विषपानके लिये कल्याणकारिणी नहीं होती। परंतु आसुरी शक्ति तो शिव ही हैं; वैसे ही फलभोगके लिये सभी तैयार रहते तपस्या चाहती ही नहीं, फिर उसे शिव या धर्म कैसे हैं, परंतु त्याग तथा परिश्रमको स्वीकारनेके लिये महापुरुष मिलेंगे ? धर्मसम्बन्धके बिना शक्ति आसुरी होकर अवश्य ही ही प्रस्तुत होते हैं। जैसे अमृतपानके अनुचित लोभसे संहारका हेतु बनेगी। प्रकृतिमाताकी यह प्रतिज्ञा है कि-देव-दानवोंका विद्वेष स्थिर हो गया, वैसे ही अनुचित यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति। फलकामनासे समाजमें विद्वेष स्थिर हो जाता है। यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥ शिवकुटुम्बका वैचित्र्य (श्रीदुर्गासप्तशती ५।१२०) शिवजीका कुटुम्ब भी विचित्र ही है। अन्नपूर्णाका अर्थात् संघर्षमें जो मुझे जीत लेगा, जो मेरे दर्पको भण्डार सदा भरा, पर भोलेबाबा सदाके भिखारी। कार्तिकेय चूर्ण कर देगा और जो मेरे समान या अधिक बलका सदा युद्धके लिये उद्यत, पर गणपित स्वभावसे ही शान्तिप्रिय। होगा, वही मेरा पति होगा। यह स्पष्ट है कि रक्तबीज, फिर कार्तिकेयका वाहन मयूर, गणपतिका मूषक, पार्वतीका शुम्भ, निशुम्भ आदि कोई भी दैत्य, दानव प्रकृति-सिंह और स्वयं अपना नन्दी और उसपर आभूषण सर्पोंके। विजेता नहीं हुए। किंतु सब प्रकृतिसे पराजित, प्रकृतिके अंश काम, क्रोध, लोभ, मोह, दर्प आदिसे पद-पदपर सभी एक-दूसरेके शत्रु, पर गृहपतिकी छत्रछायामें सभी

भग्नमनोरथ होते रहे हैं। हाँ, गुणातीत प्रकृतिपार भगवान् प्रकृतिजय है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि और उनके विकारोंपर शिव ही प्रकृतिको जीतते हैं। तभी तो प्रकृतिमाताने उन्हें नियन्त्रण करनेका आज कोई भी मूल्य नहीं। प्रकृति भी कोयला, लोहा, तेल आदि साधारण-से-साधारण वस्तुओंको ही अपना पति बनाया। यही क्यों, कन्दर्प-विजयी शिवकी प्राप्तिके लिये तो उन्होंने घोर तपस्या भी की। निमित्त बनाकर उन्हीं यन्त्रोंसे उनका संहार करा रही है। आजका संसार शुम्भ-निशुम्भकी तरह विपरीत मार्गसे आज शिव 'अनार्य' देवता बतलाये जा रहे हैं। प्रकृतिपर विजय चाहता है। इसीलिये प्रकृति अनेक तरहसे शिवकी आराधना भूल जानेसे आज राष्ट्रका भी शिव उसका संहार कर रही है। पार्थिव, आप्य, तैजस—विविध (मंगल) नहीं हो रहा है-तत्त्वोंका अन्वेषण; जल, स्थल, नभपर शासन करना; समुद्र-जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय। तलके जन्तुओंतककी शान्ति भंग करना, तरह-तरहके तेहि न भजिस मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥ यन्त्रोंका आविष्कार और उनसे काम लेना ही आजका (रा०च०मा० ४।१ सो०) शरीरका रक्षातन्त्र

(श्रीगणेशदत्तजी दुबे)

शरीरके जितने प्रवेशद्वार हैं, उनपर बड़े सतर्क प्रहरी

हानिकारक तत्त्वोंको सोखकर बाहर कफ आदिके रूपमें शरीरसे निकाल देती है। मल और मूत्रके द्वारा शरीरके

तैनात हैं। जब हम भोजन करते हैं तो चबानेके साथ ही

मुँहसे लार निकलकर उसमें मिल जाता है। लार प्रकृतिमें क्षारीय होता है। इस प्रकार जो भी जीवाणु या रोगाणु क्षारीय माध्यममें जीवित नहीं रह सकते हैं, वे मर जाते हैं।

फिर भोजन गलेसे होता हुआ पेटमें जाता है। गलेपर टांसिल नामक एक अंग है, जो कि बड़ा ही संवेदनशील है और

उसके पाससे गुजरते हुए भोजन और पानीके रोगाणु सोख लिये जाते हैं। पेटमें भोजनका सामना पेटमें उत्पन्न होनेवाले अम्लसे होता है। यह अम्ल लारके क्षारको समाप्त तो

करता ही है तथा उन जीवाणुओं और रोगाणुओंको नष्ट

कर देता है जो कि अम्लीय माध्यममें जिन्दा नहीं रह सकते हैं। इस प्रकार अब भोजन आँतमें पहुँचता है, जहाँसे शरीरके लिये आवश्यक रस आँतोंकी भित्तियोंके द्वारा सोख

लिये जाते हैं और वह जीवाणु या रोगाणुमुक्त हो जाता है। इसी प्रकारकी व्यवस्था प्रकृतिने श्वासके लिये भी कर दी है। श्वास लेते समय नासिकाग्रपर स्थित बाल श्वासके

साथ आती हुई धूल तथा अन्य वस्तुओंको रोक लेते हैं।

आहार तथा विहारमें विचित्रताओंका आना। रात्रि ईश्वरने सोनेके लिये बनायी है, परंतु रात्रिमें देरतक जागना तथा देरतक सुबह सोना एक फैशन बन गया है। उनकी बात

अन्य दूषित तथा अनावश्यक पदार्थ निकाल दिये जाते हैं।

इस प्रकार शरीरमें स्वयं इतनी विस्तृत व्यवस्था है कि

हमारी आदतें शरीरको व्याधिका मन्दिर बना देती हैं।

हमारी आधुनिकताएँ इस प्रकार हमपर हावी हो गयी हैं

कि रोगोंने भी अपनी प्रकृति बदल दी है और दवाओंके

वे प्रतिरोधी हो गये हैं। हमारी श्वेत कणिकाओंकी फौजमें

प्रहारक क्षमताका अभाव होता गया है। कारण है, हमारे

शरीरमें इतनी सुरक्षात्मक व्यवस्थाके बावजूद

व्याधि पास न फटक सके।

भाग ९१

तो अलग है जो कि रोजी-रोटीकी विवशताओंके कारण रात्रिकी पालीमें कार्य करनेको मजबूर हैं, परंतु आधुनिकताके

पाशसे ग्रसित व्यक्ति जब देर रात्रितक जागकर बिताते हैं तो वे अनजाने रोगको ही तो दावत देते हैं। नामितराचे होतर छोउट होंतर छोट हो दिएला में स्कृती अलो इस. हुतु रहे harma । MADE रे एक नाम दिए एक स्वर्ध हो प्र

परमार्थ-साधनके आठ विघ्न संख्या २] परमार्थ-साधनके आठ विघ्न (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भगवत्प्राप्तिके साधकको या परमार्थ-पथके पथिकको बीतता है। शौकीन मनुष्यको धनका अभाव तो प्राय: एक-एक पैर सँभालकर रखना चाहिये। इस मार्गमें अनेकों बना ही रहता है; क्योंकि वह आवश्यक-अनावश्यकका विघ्न हैं। आज उनमेंसे आठ प्रधान विघ्नोंके सम्बन्धमें ध्यान छोडकर जहाँ कहीं भी कोई शौककी बढिया चीज कुछ आलोचना करनी है-वे आठ ये हैं-आलस्य, देखता है, उसीको खरीद लेता है या खरीदना चाहता विलासिता, प्रसिद्धि, मान-बड़ाई, गुरुपन, बाहरी दिखाव, है। न रुपयोंकी परवा करता है और न अन्य किसी पर-दोषचिन्तन और सांसारिक कार्योंकी अत्यन्त अधिकता। प्रकारका परिणाम सोचता है। सुन्दर मकान, बढ़िया-आलस्य—आलसी मनुष्यका जीवन तमोमय रहता बढ़िया बहुमूल्य महीन वस्त्र, सुन्दर भोजन, इत्र-फुलेल, है। वह किसी भी कामको प्राय: पूरा नहीं कर पाता। कंघे, दर्पण, जूते, घड़ी, छड़ी, पाउडर आदिकी तो बात आज-कल करते-करते ही उसके जीवनके दिन पूरे हो ही क्या है, खाने-पहनने, बिछाने, बैठने, चलने-फिरने, जाते हैं। वह परमार्थकी बातें सुनता-सुनाता है, उसे सूँघने-देखने और सुनने-सुनाने आदि सभी प्रकारके अच्छी भी लगती हैं, परन्तु आलस्य उसे साधनमें तत्पर सामान उसे बढ़िया-से-बढ़िया और सुन्दर-से-सुन्दर नहीं होने देता। श्रद्धावान् पुरुष भी आलस्यके कारण चाहिये। वह रात-दिन इन्हींकी चिन्तामें लगा रहता है। उदेश्य-सिद्धितक नहीं पहुँच पाता। इसीलिये श्रद्धाके वैराग्य तो उसके पास भी नहीं फटकने पाता। वह साथ 'तत्परता' की आवश्यकता भगवान्ने गीतामें कभी-कभी भगवान्से प्रार्थना करता है कि 'हे भगवन्! मेरे मनमें आपको प्राप्त करनेकी इच्छा है, परंतु मेरे बतलायी है। आलस्यसे तत्परताका विरोध है, आलस्य सदा यही भावना उत्पन्न करता रहता है कि 'क्या है, शौकके सामान सदा बने रहें, मुझे नये-नये विलास-पीछे कर लेंगे।' जब कभी उसके मनमें कुछ करनेकी द्रव्योंकी प्राप्ति होती रहे और मैं इसी प्रकार विलासितामें भावना होती है, तभी आलस्य प्रमाद, जम्हाई, तन्द्रा डूबा हुआ ही आपको भी पा लूँ।' कहना नहीं होगा आदिके रूपमें आकर उसे घेर लेता है, अतएव कि यह प्रार्थना भी उसकी क्षणभरके लिये ही होती है। आलस्यको साधन-मार्गका एक बहुत बड़ा शत्रु मानकर ऐसे लोगोंको करोड़पतिसे कंगाल होते देखा जाता है जिस किसी उपायसे भी उसका नाश करना चाहिये। और अर्थ-कष्टके साथ ही आदतसे प्रतिकृल स्थितिमें रहनेको बाध्य होनेका एक महान् कष्ट उन्हें विशेषरूपसे विलासिता—विलासी पुरुषको मौज-शौकके सामान भोगना पड़ता है। जो मनुष्य भगवत्प्राप्ति तो चाहता है जुटानेमें ही फुरसत नहीं मिलती, वह साधन कब करे? परंत् वैराग्य नहीं चाहता और सादा जीवन बितानेमें पहले सामान इकट्ठा करना, फिर उससे शरीरको सजाना, संकोचका अनुभव करता है, वह भगवत्प्राप्तिके मार्गपर यही उसका प्रधान कार्य होता है। कभी साध्-महात्माका संग करता है तो उसकी क्षणभरको यह अग्रसर नहीं हो सकता। अतः विलासिताके भावको इच्छा होती है कि मैं भी भजन करूँ, परंतु विलासिता मनमें आते ही उसे तुरंत निकाल देना चाहिये। यह भाव उसको ऐसा करने नहीं देती। भाँति-भाँतिके नये-नये तरह-तरहकी युक्तियाँ पेश करके पहले-पहल 'कर्तव्य' समझाकर आश्रय प्राप्त कर लेता है, फिर बढ़कर फैशनके सामान संग्रह करना और उनका मूल्य चुकानेके लिये अन्याय और असत्यकी परवा न करते हुए धन मनुष्यको तबाह कर डालता है, अतएव इससे विशेष कमानेके काममें लगे रहना—इन्हींमें उसका जीवन सावधान रहना चाहिये। विलासी पुरुषोंका संग करना या

भाग ९१ उनके आस-पास रहना भी विलासितामें फँसानेवाला है। धनीपनको कायम रखनेके लिये अन्दर-ही-अन्दर जलता इसलिये विलासिताको परम शत्रु समझ इसका सर्वथा और जाल रचता रहता है। उसका जीवन कपट, दु:ख नाश करके सभी बातोंमें सादगीका आचरण करना चाहिये। और सन्तापका घर बन जाता है। ऐसी अवस्थामें साधनका विलासितामें अनेक हानियाँ हैं, परंतु निम्नलिखित दस तो स्मरण ही नहीं रहता; अतएव इस अवस्थाकी प्राप्ति हानियाँ तो होती ही हैं, इस बातको याद रखना चाहिये। न हो, इससे पहले ही बढ़ती हुई प्रसिद्धिको रोकनेकी १-धनका नाश, चेष्टा करनी चाहिये। यह बात याद रखनी चाहिये-२-आरोग्यताका नाश, 'जिनकी प्रसिद्धि नहीं हुई और भजन होता है, वे पूरे भाग्यवान् हैं। जितनी प्रसिद्धि है, उससे ज्यादा भजन ३-आयुका नाश, ४-सादगीके सुखका नाश, होता है तो भी अधिक डर नहीं है। जितना भजन होता ५-देशके स्वार्थका नाश, है उतनी ही प्रसिद्धि है तो गिरनेका भय है। जितना भजन होता है, उससे कहीं ज्यादा प्रसिद्धि हुई तो वह ६-धर्मका नाश, ७-सत्यका नाश, गिरने लगा और जहाँ कोई बिना भजनके ही भजनानन्दी ८-वैराग्यका नाश, कहलाता है, वहाँ तो उसका पतन हो ही चुका।' मान-बड़ाई—यह बड़ी मीठी छुरी है या विषभरा ९-भक्तिका नाश, सोनेका घड़ा है। देखनेमें बहुत ही मनोहर लगता है, १०-ज्ञानका नाश। प्रसिद्धि-संसारमें ख्याति साधन-मार्गका एक परंतु साधन-जीवनको नष्ट करते इसे देर नहीं लगती। बड़ा विघ्न है। इसीसे सन्तोंने भगवत्प्रेमको वैसे ही गुप्त संसारके बहुत बड़े-बड़े पुरुषोंके बहुत बड़े-बड़े कार्य रखनेकी आज्ञा दी है, जैसे भले घरकी स्त्री जारके मान-बड़ाईके मोलपर बिक जाते हैं। असली फल अनुरागको छिपाकर रखती है। साधककी प्रसिद्धि होते उत्पन्न करनेके पहले ही वे सब मान-बडाईके प्रवाहमें ही चारों ओरसे लोग उसे घेर लेते हैं। साधनके लिये बह जाते हैं। मानकी अपेक्षा भी बड़ाई अधिक प्रिय उसे समय मिलना कठिन हो जाता है। उसका अधिक मालूम होती है। बड़ाई पानेके लिये मनुष्य मानका त्याग समय सैकड़ों-हजारों आदिमयोंसे बात-चीत करने और कर देता है, लोग प्रशंसा करें, इसके लिये मान छोडकर पत्र-व्यवहारमें बीतने लगता है। जीवनकी अन्तर्मुखी सबसे नीचे बैठते और मानपत्र आदिका त्याग करते लोग वृत्ति बहिर्मुखी बनने लगती है। होते-होते उसका जीवन देखे जाते हैं। बड़ाई मीठी लगी कि साधन-पथसे पतन सर्वथा बहिर्मुखी हो जाता है। वह बाहरके कामोंमें ही हुआ। आगे चलकर तो उसके सभी काम बड़ाईके लिये लग जाता है और क्रमशः गिरने लगता है। परंतु ही होते हैं। जबतक साधनसे बडाई होती है तबतक वह प्रसिद्धिमें प्रिय भाव उत्पन्न हो जानेके कारण उसे वह साधकका भेष रखता है। जहाँ किसी कारणसे परमार्थ-सदा बढ़ाना चाहता है और यों दिनों-दिन अधिकाधिक साधनमें रहनेवाले मनुष्योंकी निन्दा होने लगती है, वहीं लोगोंसे परिचय प्राप्त कर लेता है। फिर उसका असली वह उसे छोड़कर जिस कार्यमें बड़ाई होती है, उसीमें साधकका स्वरूप तो रहता नहीं, परन्तु प्रसिद्धि कायम लग जाता है; क्योंकि अब उसे बड़ाईसे ही काम है, रखनेके लिये वह दम्भ आरम्भ कर देता है और वैसे भगवान्से नहीं। अतएव मान-बड़ाईकी इच्छाका सर्वथा ही रात-दिन जलता और नये-नये ढोंग रचा करता है, त्याग करना चाहिये, परंतु सावधान! यह वासना बहुत जैसे निर्धन मनुष्य धनी कहानेपर अपने उस झुठे दिखाऊ ही छिपी रह जाती है, सहजमें इसके अस्तित्वका पता

संख्या २] परमार्थ-साधन	ाके आठ विघ्न १३

नहीं लगता। मालूम होता है, हम बड़ाईके लिये काम	उससे लाभ उठाने देना, मार्गके बीमारोंकी सेवा करना,
नहीं कर रहे हैं, परन्तु यदि निन्दा जरा भी अप्रिय लगती	अशक्तोंको शक्तिभर साहस, शक्ति और धैर्य प्रदान
है और बड़ाई सुनते ही मनमें सन्तोष–सा प्रतीत होता	करना तो साधकका परम कर्तव्य है। परंतु गुरु बनकर
है या आनन्दकी एक लहर–सी उठकर होठोंपर हँसीकी	उनसे सेवा कराना, पूजा प्राप्त करना, अपनेको ऊँचा
रेखा-सी चमका देती है तो समझना चाहिये कि	मानकर उन्हें नीचा समझना, दीक्षा देना, सम्प्रदाय
बड़ाईकी इच्छा अवश्य मनमें है। बहुत-से मनुष्य तो	बनाना, अपने मतको आग्रहसे चलाना, दूसरोंकी निन्दा
भोगोंतकका त्याग भी बड़ाई पानेके लिये ही करते हैं।	करना और बड़प्पन बघारना आदि बातें भूलकर भी नहीं
यद्यपि न करनेवालोंकी अपेक्षा बड़ाईके लिये किया	करनी चाहिये।
जानेवाला त्याग या धार्मिक सत्कार्य बहुत ही उत्तम है,	बाहरी दिखाव —साधनमें 'दिखाव' की भावना
परंतु परमार्थदृष्टिसे मान-बड़ाईकी इच्छा अत्यन्त हेय	बहुत बुरी है। वस्त्र, भोजन और आश्रम आदि बातोंमें
और निन्दनीय होनेके साथ ही साधनसे गिरानेवाली है।	मनुष्य पहले तो संयमके भावसे कार्य करता है, परंतु
गुरुभाव— साधन-अवस्थामें मनुष्यके लिये	पीछे उसमें प्राय: 'दिखाव' का भाव आ जाता है। इसके
गुरुभावको प्राप्त हो जाना बहुत ही हानिकारक है। ऐसी	अतिरिक्त, 'ऐसा सुन्दर आश्रम बने, जिसे देखते ही
अवस्थामें, जब वह स्वयं ही सिद्धावस्थाको प्राप्त नहीं	लोगोंका मन मोहित हो जाय, भोजनमें इतनी सादगी हो
होता, जब उसीका साधनपथ रुक जाता है, तब वह	कि देखते ही लोग आकर्षित हो जायँ। वस्त्र इस ढंगसे
दूसरोंको तो कैसे पार पहुँचायेगा? ऐसे ही कच्चे	पहने जायँ कि लोगोंके मन उनको देखकर खिंच
गुरुओंके सम्बन्धमें यह कहा जाता है, जैसे अन्धा	जायँ'—ऐसे भावोंसे भी ये कार्य होते हैं। यद्यपि यह
अन्धोंकी लकड़ी पकड़कर अपने सहित सबको गड्ढेमें	दिखावटी भाव सुन्दर और असुन्दर दोनों ही प्रकारके
डाल देता है, वैसी ही दशा इनकी होती है। परमार्थपथमें	चाल-चलन और वेष-भूषामें ही रह सकते हैं। बढ़िया
गुरु बननेका अधिकार उसीको है, जो सिद्धावस्थाको	कपड़े पहननेवालेमें स्वाभाविकता हो सकती है और
प्राप्त कर चुका हो। जो स्वयं लक्ष्यतक नहीं पहुँचा है,	मोटा खद्दर या गेरुआ अथवा बिगाड़कर कपड़े पहननेवालेमें
वह यदि दूसरोंके पहुँचानेका ठेका लेने जाता है तो	'दिखाव' का भाव रह सकता है। इसका सम्बन्ध
उसका परिणाम प्राय: बुरा ही होता है। शिष्योंमेंसे कोई	ऊपरकी क्रियासे नहीं है, मनसे है तथापि अधिकतर
सेवा करता है तो उसपर उसका मोह हो जाता है। कोई	सुन्दर दिखानेकी भावना ही रहती है। लोकमें जो फैशन
प्रतिकूल होता है तो उसपर क्रोध आता है। सेवकके	सुन्दर समझा जाता है, उसीका अनुकरण करनेकी चेष्टा
विरोधीसे द्वेष होता है। दलबन्दी हो जाती है। जीवन	प्राय: हुआ करती है। अन्दर सचाई होनेपर भी 'दिखाव'
बहिर्मुख होकर भाँति-भाँतिके झंझटोंमें लग जाता है।	की चेष्टा साधकको गिरा ही देती है। अतएव इससे सदा
साधन छूट जाता है। उपदेश और दीक्षा देना ही	बचना चाहिये।
जीवनका व्यापार बन जाता है। राग–द्वेष बढ़ते रहते हैं	पर-दोष-चिन्तन —यह भी साधन-मार्गका एक
और अन्तमें वह सर्वथा गिर जाता है। साधन-पथमें	भारी विघ्न है। जो मनुष्य दूसरेके दोषोंका चिन्तन करता
दूसरोंको साथी बनाना, पिछड़े हुओंको साथ लेना,	है; वह भगवान्का चिन्तन नहीं कर सकता। उसके
मित्रभावसे परस्पर सहायता करना, या भूले हुओंको मार्ग	चित्तमें सदा द्वेषाग्नि जला करती है। उसकी जहाँ नजर
बताना, साथमें प्रकाश या भोजन हो तो दूसरोंको भी	जाती है, वहीं उसे दोष दिखायी देते हैं। दोषदर्शी सर्वत्र

भगवान्को कैसे देखे? इसी कारण वह जहाँ-तहाँ हर देखभाल करनेमें ही जीवनका अमूल्य समय रोज दो किसीकी निन्दा कर बैठता है। परदोष-दर्शन और घड़ी स्वस्थचित्तसे भगवद्भजन किये बिना ही बीत जाय। परिनन्दा साधन-पथके बहुत गहरे गड्ढे हैं। जो इनमें गिर जिन बेचारोंके पेट पूरे नहीं भरते, उनके लिये तो कदाचित् दिन-रात मजदूरीमें लगे रहना और अधिक-पड़ता है, वह सहज ही नहीं उठ सकता। उसका सारा भजन-साधन छूट जाता है; अतएव साधकको अपने दोष से-अधिक कार्यका विस्तार करना क्षम्य भी हो सकता देखने तथा अपनी सच्ची निन्दा करनी चाहिये। जगतुकी है, परंतु जो सीधे या प्रकारान्तरसे धनकी प्राप्तिके लिये ही कार्योंको बढ़ाते हैं, वे तो मेरी तुच्छ बुद्धिमें भूल ही ओरसे उदासीन रहना ही उसके लिये श्रेयस्कर है। करते हैं। निष्कामभावसे करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुष

सांसारिक कार्योंकी अधिकता—मनुष्यको घरके, संसारके, आजीविकाके, यहाँतक कि परोपकारतकके भी जब अधिक कार्योंमें व्यस्त हो जाते हैं, तब प्राय: कार्य उसी हदतक करने चाहिये, जिसमें विश्राम करने तथा दूसरी आवश्यक बातें सोचनेके लिये पर्याप्त समय मिल जाय। जो मनुष्य सुबहसे लेकर रातको सोनेतक काममें ही लगे रहते हैं, उनको जब विश्राम करनेकी ही

फुरसत नहीं मिलती, तब घण्टे-दो घण्टे स्वाध्याय करने अथवा मन लगाकर भगवच्चिन्तन करनेको तो अवकाश मिलना सम्भव ही कैसे हो सकता है ? उनका सारा दिन हाय-हाय करते बीतता है, मुश्किलसे नहाने-खानेको समय मिलता है। वे उन्हीं कामोंकी चिन्ता करते-करते

सो जाते हैं, जिससे स्वप्नमें भी उन्हें वैसी ही सृष्टिमें विचरण करना पड़ता है। असलमें तो सांसारिक पदार्थोंके अधिक संग्रह करनेकी इच्छा ही दुषित है। दानके तथा परोपकारके लिये भी धन-संग्रह करनेवालोंकी मानसिक दयनीय दुर्दशाके दृश्य प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, फिर भोगके लिये अर्थ-संचय करनेवालोंके दु:ख भोगनेमें तो आश्चर्य

ही क्या है, परंतु धन संचय किया भी जाय तो इतना मनुष्य प्रभु-कृपापर जितना ही विश्वास करता है, उतना काम तो कभी नहीं बढ़ाना चाहिये, जिसकी सँभाल और

ही वह प्रभुकी सुखमय गोदकी ओर आगे बढ़ता है। — गजानन-स्तुति

निष्कामभाव चला जाता है और कहीं-कहीं तो ऐसी परिस्थित उत्पन्न हो जाती है, जिसमें बाध्य होकर सकामभावका आश्रय लेना पड़ता है; अतएव जहाँतक बने साधक पुरुषोंको सांसारिक कार्य उतने ही करने चाहिये, जितनेमें गृहस्थीका खर्च सादगीसे चल जाय,

प्रतिदिन नियमित रूपसे भजन-साधनको समय मिल सके,

भाग ९१

चित्त न अशान्त हो और न निकम्मेपनके कारण प्रमाद या आलस्यको ही अवसर मिले। कर्तव्य-पालनकी तत्परता बनी रहे और मनुष्य-जीवनके मुख्य ध्येय 'भगवत्प्राप्ति' का कभी भूलकर भी विस्मरण न हो। विघ्न और भी बहुतसे हैं, पर प्रधान-प्रधान

विघ्नोंमें आठ बडे प्रबल हैं। साधकको चाहिये कि वह दयामय सिच्चदानन्द भगवान् की कृपापर विश्वास करके और उसीका आश्रय ग्रहण करके इन विघ्नोंका नाश कर दे। प्रभु-कृपाके बलसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

(डॉ० श्रीसत्यप्रकाशजी 'बृजेश किंकर')

जय भक्त शिरोमणि गण नायक श्रीराम नाम हियधारे हो। हे विद्याबारिधि सिद्धि सदन, सुख सम्पति देने वारे हो। हो अन्ध बधिर के दु:ख टारक, संतति सौभाग्य सम्भारे हो॥

करें रोम-रोम में रमण राम तुम उमा महेश दुलारे हो।। प्रभु रिद्धि-सिद्धि दाता भक्ती, सब विघ्न विनाशन वारे हो। प्रभु दीन हीन अविवेकी के, तुम भाग्य कुभाग्य विदारे हो। THINDERS MY DISCOURTS OF THE PRINTED BY CONTRACT OF THE PRINTED BY CANTRACT OF THE PRINTED BY CANTRACT

शिव और सती संख्या २] शिव और सती (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी) सिव सम को रघुपति ब्रत धारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥ कहें न संसय जाहीं 'तब प्रभुकी जो इच्छा है, उसीमें श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाईमें ग्रन्थकार सतीको प्रेरित कर देना हमारा भी धर्म है।' इसलिये श्रीगोस्वामीजीने महर्षि याज्ञवल्क्यके प्रवचनके द्वारा उन्होंने कहा— भगवान् शिव और माता सतीदेवीकी असीम महिमा बड़े जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥ ही सुन्दर ढंगसे प्रतिपादित की है। प्रथम चरणमें 'सिव तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥ सम को 'और द्वितीय चरणमें 'सती असि नारी 'पदके यद्यपि भगवान् शिवके विषयमें यह प्रमाण है कि **'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'** तथापि जिस भावीमें द्वारा दम्पतीकी महिमाकी गम्भीरता पराकाष्ठाको पहुँचा हरिकी इच्छा शामिल है, उसे हृदयमें विचारकर भगवान् दी गयी है। भगवान् शिवके लिये 'रघुपति व्रतधारी' विशेषण ही उनके व्रतकी महत्ताको प्रकट कर रहा है; शिव कदापि उसके मेटनेकी इच्छा नहीं करते, बल्कि क्योंकि संसारमें सब धर्मोंका सार, सब तत्त्वोंका निचोड़ वैसा ही होनेमें आप भी सहायक हो जाते हैं-भगवत्प्रेम ही निश्चय किया गया है। भगवान् परब्रह्ममें हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥ दृढ़ निष्ठाका हो जाना ही परम विशिष्ट धर्म है और —सच है, सुजान भक्तोंकी भक्तिका इसीसे परिचय भगवान् शिवने तो अपने अनुभवसे इसीको सार समझकर मिलता है। जगत्को नि:सार निश्चित कर लिया था। जैसे-यही मर्म श्रीगुरु विसष्ठजीके इस वाक्यमें भरा हुआ है-उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥ इसी प्रेम-प्रभावकी महिमासे सती-ऐसी नारीमें भी सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ। उनकी आसक्ति न थी। जिस समय त्रेतायुगमें कुम्भज क्योंकि जब अगाध-हृदय श्रीभरतजीने कहा कि-ऋषिके आश्रमसे वह सतीके साथ कैलासको लौट रहे सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।। थे, उसी समय दण्डकारण्यमें सीताहरणके कारण बुझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु॥ पत्नीवियोगमें दु:खित मानव-लीला तब वसिष्ठजीने स्पष्ट कह दिया-करते श्रीरघुनाथजीका उन्हें दर्शन हुआ और उन्होंने '**जय** तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥ सच्चिदानंद जग पावन' और 'सच्चिदानंद परधामा' वस्तुत: बात भी यही है, भगवान् शिव तथा श्रीवसिष्ठजीको भावीके मेटनेकी सामर्थ्य भी तो रामभक्तिके कहकर उनको प्रणाम किया। इसपर सतीको यह सन्देह प्रतापसे ही मिली थी। नहीं तो— उत्पन्न हुआ कि नृपसुतको '*सच्चिदानंद परधामा'* कहकर सर्वज्ञ शिवने क्यों प्रणाम किया? भगवान् शिवने कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार। सतीको भगवत्-अवतारकी बात अनेक प्रकारसे समझायी, देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥ परंतु उन्हें बोध न हुआ— श्रीमहादेव अथवा मुनि वसिष्ठजी अपने देवपन या मुनिपनके बलसे विधि-अंकके मिटानेकी सामर्थ्य तो लाग न उर उपदेसु जदिप कहेउ सिवँ बार बहु। रखते नहीं थे। यह अघटित सामर्थ्य भगवान्की दयासे बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥ और भगवत्-भक्तिके प्रतापसे भक्तोंको ही हो सकती है। शिवजीने अपने हृदयमें ध्यान धरकर देखा कि 'इसमें हरिमायाकी प्रेरणा हो रही है; क्योंकि जब *'मोरेह* अतः उन भक्तोंका यह सिद्धान्त रहता है कि 'हम तो

भाग ९१ ************************* तुम्हारी खुशीमें खुश हैं और कुछ नहीं चाहते'— मिलता है कि जब कोई धर्मसंकट आ पड़े तो सच्चे हृदयसे हरिस्मरण करनेसे ही उसके निर्वाहकी राह राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है! सतीको परीक्षा लेनेका आदेश करते समय भगवान् निकल आयेगी। शिवने इतना चेता दिया था—'करेह सो जतन बिबेक अतएव जब केवल एक जन्मके लिये सतीका बिचारी' परंतु सतीने परीक्षा लेनेके लिये श्रीसीताजीका त्याग हो गया, तब सतीको अपनी करनीपर अत्यन्त ही वेष धारण किया, जिसमें शिवजीने अपनी स्वामिनी पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने भी उन्हीं परमप्रभु और माताकी दृढ़ निष्ठा कर रखी थी। अत:-श्रीरघुनाथजीकी हृदयसे प्रतिपत्ति ली और कहा कि 'हे आरतिहरण! हे दीनदयाल!! मेरा यह शरीर शीघ्र छूट सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं। क्योंकि उनकी यह निश्चित भावना थी कि-जाय, जिससे मैं दु:ख-सागरको पारकर पुन: भगवान् जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥ शिवजीको प्राप्त कर सकूँ'— बल्कि शिवजी सतीको सदाके लिये त्याग देनेका किह न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामिह सुमिर सयानी॥ चिन्तन कर रहे थे, इससे उनके हृदयमें अत्यन्त सन्ताप जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरित हरन बेद जसु गावा॥ हो उठा— तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥ जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥ परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु। प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु॥ तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ। परंतु भगवद्भक्तोंको भगवान्की शरण ही प्रत्येक होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥ सुख-दु:खकी अवस्थामें आधार रहती है और उन्हीं भगवत्कृपासे योग लग गया और अपने पिता **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** रूप विरद पालनेवाले प्रभुसे दक्षके यज्ञमें जाकर योगानलसे शरीरको त्यागकर सतीने प्रदान की हुई बुद्धिके द्वारा सदैव शरणागतोंकी रक्षा हुआ हिमाचलके घर पार्वतीके रूपमें पुनर्जन्म धारणकर करती है; क्योंकि 'ददािम बुद्धियोगं तम्' भी प्रभुकी भगवान् शिवको पुनः पतिरूपमें प्राप्त कर लिया। ही प्रतिज्ञा है। अतएव जब भगवान् शंकरने ऐसे समयमें पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥ प्रतिपत्ति ली, जैसे-अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥ -इस प्रकार भगवान् शिवने जो बिना अघके ही तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥ केवल सीताका वेष धारण करनेके अपराधपर सतीका एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। —तब भगवान् भक्तवत्सलने उनकी बुद्धिमें प्रेरणा त्याग कर दिया था, यह उनकी भक्तिकी पराकाष्ठा थी। की कि सदाके लिये त्यागकी जरूरत नहीं है। केवल 'बिन् अघ तजी सती असि नारी' इस पदमें इसी जन्ममें सतीका त्याग करना ठीक है, जिसमें उन्होंने 'अघ' शब्द आया है। अघ और अपराधमें महान् अन्तर सीताका वेष धारण किया है। अतएव ऐसा ही संकल्प है। अघ उस दुष्कर्मको कहते हैं, जो वेदादिद्वारा निषिद्ध भगवान् शिवने किया। जिससे दोनों काम हो गये; न तो होनेपर भी जान-बूझकर अपनी वासनानुसार किये जाते हैं। अत: वह क्षम्य कभी नहीं हो सकते, उनका फल सदाके लिये सतीका त्याग करना पड़ा और न उस शरीरसे प्रीति ही रखी गयी। अवश्यमेव भोगना पड़ता है, परंतु 'अपराध' चूकको समस्त भक्तजनोंको (वैष्णवानां यथा शम्भुः) कहते हैं, जो सदा क्षम्य होती है; क्योंकि वह किसी भक्तशिरोमणि भगवान् शिवके इस रहस्यसे यह उपदेश पापबुद्धि या कुवासनाके कारण न होकर भूलसे की

संख्या २] इस्रक्रम्हम्मम्हम्मम्हम्मम्हम्मम्	
जाती है। सतीजीने जो सीताका वेष धारण किया था,	उसे त्याग ही डाला तब सतीका जीवन महान् विपत्तिमें
उसमें कदापि कोई कुवासना न थी। उसका उद्देश्य तो	पड़ गया—
केवल यही जाँच करनेका था कि श्रीरघुनाथजी सचमुच	'पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी।'
ही सच्चिदानन्द ब्रह्मके अवतार हैं अथवा राजपुत्र हैं।	तथा—
केवल भगवत्स्वरूपके बोधार्थ सीताका वेष धारण करना	नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥
'अघ' नहीं कहा जा सकता और नारीका त्याग केवल	सती बसिंह कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
अघके ही कारण हो सकता है, परंतु केवल अपराध हो	मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं॥
जानेपर, जो क्षम्य भी हो सकता है, भगवान् शिवने उसे	तथापि उन्होंने अपने पतिव्रतधर्मकी पराकाष्ठाको
क्षमा न कर उपासनामें विरोध पड़नेके भयसे त्याग दिया।	प्रमाणितकर—
भगवान् शिवकी इस रघुपतिव्रतनिष्ठाको धन्य है!	धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहिं चारी॥
उपर्युक्त चौपाईमें कोई-कोई अर्थ करनेवाले 'बिनु	—को चरितार्थ कर दिया। इसी कारण आपको
अघ' पदको विशेषण मानकर 'अनघ शिवजी' ऐसा	ऐसा पद प्राप्त हुआ कि—
अर्थ करते हैं, परंतु सतीको यदि अघयुक्त माना जाय तो	पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
उसके त्यागसे श्रीशंकरजीमें रघुपतिव्रतनिष्ठाका महत्त्व	महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥
ही नहीं रह जाता। फिर जिस मुख्य विषयके उद्घाटनके	सांसारिक स्त्रियाँ स्वार्थपरायणा होती हैं, यदि
लिये इस चौपाईकी रचना की गयी है, उसका महत्त्व	पतिने किसी उचित बातपर भी उन्हें रोका तो वे तत्काल
ही नष्ट हो जायगा। यदि कोई शंका करे कि सतीने	मैकेकी राह लेती हैं और वहाँकी सहायतासे लड़ाई ठान
शिवसे मिथ्या भाषण किया था, वह तो अघ था। इसका	देती हैं। बेचारे पतिको नाकों चने चबाने पड़ते हैं और
उत्तर यह है कि उसे तो शिवजीने भगवत्–मायाकी	अन्तमें अनुनय-विनय करनेपर मैकेसे वह लौटनेके लिये
प्रेरणा समझकर उसपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया था—	राजी होती हैं तथा पतिको सदा हुकूमतमें रखती हैं, परंतु
बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥	पूजनीया माता सतीकी पतिनिष्ठाको तो देखिये कि
ग्रन्थमें भी सतीत्यागका कारण झूठ बोलना नहीं	अकारण त्यागे जानेपर भी—
बिल्क सीताका वेष धारण करना ही लिखा गया है और	जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥
उसे अघ न कहकर अपराध ही बतलाया गया है—	—अन्तर्यामी भगवान्की प्रपत्तिमें इस प्रकारकी शर्त
'सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।'	लगा रही हैं तथा पतिदेवकी आज्ञा प्राप्तकर जब
इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ और परम पुरुषार्थ जो भगवद्धिक	दक्षयज्ञमें जाती हैं तो वहाँ अपने पतिदेवके अपमानको
है, उसमें श्रीशिवजीके समान कौन व्रतधारी हो सकता	श्रवणकर पैत्रिक-सम्बन्धको तृणवत् समझ इस प्रकार
है ? 'सिव सम को' इस पदका अभिप्राय तो स्पष्ट हो	त्याग कर देती हैं कि माता-पिताकी ममता तो क्या,
गया। अब <i>'सती असि नारी'</i> पदके अभिप्रायकी	पतिके प्रतिकूल होनेवाले पिताके शुक्रसे उत्पन्न अपने
आलोचना करनी है। सतीजी कैसी आदर्श नारी थीं,	शरीरसे भी अपनी आत्माको अलग कर देती हैं।
इसका प्रमाण उनके इसी एक कर्तव्यसे दिया जा सकता	अनुकूल पतिमें भी ऐसा प्रेम विरली ही नारियोंमें पाया
है कि जब शिवजीने अपनी क्षमाशीला, अनन्या सतीको,	जाता है और इधर तो पतिदेवने रुष्ट होकर सतीसे
अपराध क्षम्य होनेपर भी, इतना कठिन दण्ड दिया कि	सम्बन्ध ही विच्छेद कर डाला था। तथापि—

भाग ९१ हैं। आपकी गिनती जगतुके जीवोंमें कभी नहीं की जा सिव अपमानु न जाइ सिंह हृदयँ न होइ प्रबोध। सकती, आप ईश्वर-कोटिमें हैं और जीवोंके कल्याणार्थ सकल सभिह हठि हटकि तब बोली बचन सक्रोध॥ आविर्भूत होते हैं। श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीयुगल महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥ विग्रहका ऐश्वर्य-पिता मंदमित निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥ नमामीशमीशान तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥ निर्वाणरूपं। अस किह जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥ वेदस्वरूपं॥ विभ् व्यापकं ब्रह्म धन्य है सतीकी सत्यनिष्ठाको! इसी कारण 'सती तथा— असि नारी' पद दिया गया है। भव भव बिभव पराभव कारिनि । बिस्विबमोहनि स्वबसबिहारिनि।। इस संसारमें स्त्रियोंके उद्धारका सर्वश्रेष्ठ और —इत्यादि पदोंमें परिलक्षित है। सुलभ मार्ग केवल पातिव्रत्य-धर्म ही शास्त्रसम्मत है। मानसग्रन्थकारको लीलाप्रकरणमें माता सती और कैकेयीके सम्बन्धमें श्रीरघुनाथजीके विपरीत आचरण करनेके **'नारिधरमु पति देउ न दूजा'** इसकी शिक्षा संसारभरकी स्त्रियोंको सतीसे लेनी चाहिये तथा मनुष्योंके उद्धारका कारण बहुत कुछ बुरा-भला कह देना पड़ा है। जैसे— सर्वश्रेष्ठ और परम सुलभ मार्ग केवल भगवद्भिक्त ही है, सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥ यह बात भी सर्वशास्त्रसम्मत तथा निर्विवाद है और तथा कैकेयीके निमित्त— पुरुषमात्रको ऐसे परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके हेत् भगवान् बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा॥ शिवजीका अनुसरण करना चाहिये। प्रेमपथके अद्वितीय परंतु इन सत्पात्रोंके गोप्य ऐश्वर्यके जाननेवाले आचार्य भगवान् शंकरका अनुसरणकर अनायास मनुष्य श्रीगोसाईंजी अवसर पाकर महर्षि याज्ञवल्क्यके मुखसे संसार-सागरको पार कर सकता है। 'बिनु अघ' सतीके लिये तथा उन्हींके शिष्य महर्षि भरद्वाजके मुखसे-इस प्रकार भगवान् शिव और माता सती अपनी निष्ठा और सदाचारके द्वारा समस्त जीवोंके उद्धारका 'तात कैकइहि दोस् नहिं गई गिरा मित धूति॥' मार्ग निश्चय करा रहे हैं तथा उसे अपने चरित्रद्वारा स्वयं - कैकेयीकी निर्दोषताको सुचित कर दिया है। दिखला रहे हैं। दम्पतीका युगल विग्रह जगत्मात्रके शिव और सतीकी महिमाको इदिमत्थम् कौन कह कल्याण और उपकारका हेतु है। भगवान् शिवका चरित्र सकता है ? इनका नाम ही 'कल्याण' और 'सत्स्वरूपा' जीवोंके उपदेशके लिये ही है, आप साक्षात् भगवद्गुणावतार है। ऐसे भगवान् शिव और सती माताकी जय हो! शिवरूप-माधुरी (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०) शिव के माथ विराजे चन्दा तन पर कैसे भस्म सुशोभन हाथ त्रिशूल जटा में गंगा। हिम पर जैसे मेघ बने घन। गौरा निर्मल नयन करें भयमोचन में वामभाग राजत

बीच में बालक है एकदन्ता॥१॥ तीनों ताप हरें तिरलोचन॥३॥ नाग गले में माथ त्रिपुण्डा

कटि बाघम्बर शोभा पाये उरकी माला मन महकाये।

हैं सारे हिरण्य केशराशि मन भाये डमरु संग Hinduism Discordi Siènve मे ने पांक्र इंडी वीडिंग प्राप्त | MADE विश्व कि निर्माण विश्व के कि ने कि न

कानन कुण्डल दृढ़ भुजदण्डा।

साधकोंके प्रति— संख्या २] साधकोंके प्रति— [किस ओर?] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) बार-बार अपनेसे पूछना चाहिये-मेरा चित्त किस तत्पर रहते हैं। जो वस्तु जिसे प्यारी होती है, अच्छी ओर जा रहा है? वृत्तियाँ दो प्रकारकी हैं-गौण और लगती है, उसकी स्मृति उसे स्वभावत: ही बनी रहती मुख्य। हमलोगोंकी मुख्य वृत्ति निरन्तर संसारके विषयों है। यदि मुख्य वृत्तिसे एकान्तमें कुछ समयतक निरन्तर और भोगोंकी ओर प्रवाहित हो रही है। सारी इन्द्रियाँ भजन होता रहे तो यह सर्वथा सम्भव है कि आगे और सारी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही पतनकी ओर भागी जा चलकर चित्त एक क्षणके लिये भी वहाँसे विचलित न रही हैं। गौण वृत्तिके अनुसार बाहरी मनसे हम थोड़ा-हो। फिर तो पलभरके लिये भी भजनका विस्मरण नहीं सा (वह भी संसारमें 'साधु' कहलानेकी इच्छासे और हो सकता। गोपियोंकी तो यही दृढ़ स्थिति थी-मान-सम्मान पानेकी लालसासे) लोग-दिखाऊ भजन-चलत-चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात। पूजन करते हैं। ऐसे भजनको भजन कहना उसका उपहास हृदय ते वह स्याम मूरित छिन न इत-उत जात॥ करना है। हाँ, न होनेसे तो ऐसा भजन भी उत्तम ही है। जागनेका क्या कहना, स्वप्नमें भी गोपियोंको हमारी मुख्य वृत्ति सदैव सांसारिक विषयोंके सेवनमें इस श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु दीखती ही न थी। उनके संस्कार इतने श्रीकृष्णमय हो गये; मन, प्राण, चित्त प्रकार लगी रहती है, मानो उसका वही स्वरूप हो। जब और शरीर इतना अधिक श्रीकृष्णके रंगमें रँग गये कि संसारके स्वार्थपूर्ण कामसे कुछ अवकाश मिला तो उनके लिये श्रीकृष्णके अतिरिक्त कहीं कुछ रहा ही थोड़ा-सा भजन कर लिया। इस प्रकार संसार हमें एक ओर खींच रहा है और भजन दूसरी ओर। हमने स्वयं नहीं। यही अन्तर्मुखी—भगवन्मुखी वृत्ति है। जब हमारी भी तो संसारका ही साथ दे रखा है। इसीलिये उसीकी सारी वृत्तियाँ अवगुणोंसे हटकर भगवान्की ओर स्वभावत: प्रवाहित होने लगें—नित्य-निरन्तर जाने लगें, तब समझना विजय होती है और भजन दब जाता है। भगवान्की तो आज्ञा है कि सब समय मेरा स्मरण करते हुए ही चाहिये कि हम भजनके पथपर हैं और इस प्रकार जो युद्ध करो। (गीता ८।७) जब युद्ध-जैसे विकट स्थलमें भजन होता है, वहीं सच्चा भजन है। जहाँ बाणोंके लगने और जीत-हार होनेका भय बना भजनमें चित्त ही मुख्य है। इस बातपर भगवान्ने रहनेपर भी भगवानुका निरन्तर स्मरण बना रह सकता बार-बार जोर दिया है— है, तब हमलोग इस संसार-समरमें क्यों न उन 'एक' अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। का ही बराबर स्मरण करते हुए युद्ध (कर्म) करें। (गीता ९।२२) तो फिर कारण क्या है कि संसारके विषय-चित्त भगवान्में लगे, वह परमात्मामें एकाकार हो भोगोंका इतना अधिक स्मरण होता है और वे हमारे जाय, ऐसी चेष्टा बराबर होती रहनी चाहिये। इसीका नाम 'अभ्यास' है। दूसरे जो चित्त विषयोंमें रमा रहता इतने प्रिय और निकटस्थ हो गये हैं, मानो उनसे हमारा है, उसे वहाँसे बार-बार हटाते रहना ही 'वैराग्य' है। स्वाभाविक या जन्मजात सम्बन्ध हो? कारण यह है कि हम स्वयं भजनके महत्त्वको न समझकर भोगोमें ही भगवानुमें चित्त लगाना असम्भव नहीं; आवश्यकता है अभ्यास और वैराग्यकी। चरम सुख मान बैठे हैं। प्रेम तो दूर रहा, भजनमें हमारी आदर-बुद्धि भी नहीं है। विषयोंके लिये हम भजनको चित्तकी वृत्तियोंके प्रवाहको, जो निरन्तर संसारकी त्याग देते हैं। शरीरमें हमारी इतनी प्रगाढ़ प्रीति है कि ओर जा रहा है, वहाँसे हटाकर परमात्मामें लगाते रहना चलते-फिरते स्वभावतः ही हम इसकी रक्षा करनेमें चाहिये। जहाँ मन परमात्मामें लगा कि फिर वहाँसे हटना

भाग ९१ नहीं चाहेगा; क्योंकि यह तो परम आनन्द एवं परम शान्तिकी भजन करो।' जो वस्तु स्वयं अनित्य है, उससे नित्य खोजमें है और ईश्वरमें लगते ही उसे वह चिर अभिवांछित सुखकी आशा करना निरी मूर्खता है। यहाँ तो बस दु:ख-शान्ति और आनन्द मिलने लगता है। फिर मनका ऐसा ही-दु:ख है-जन्ममें दु:ख, मृत्युमें दु:ख, जरामें दु:ख, स्वभाव बन जाता है कि वह भगवानुको छोडकर एक क्षणके व्याधिमें दु:ख, धनमें दु:ख और मान-सम्मानमें दु:ख। लिये भी कहीं नहीं जाता। उसका भटकना सदाके लिये इस पानीके बुलबुलेपर क्या मरना ? इस मृगतृष्णाके पीछे बन्द हो जाता है। यही चित्तकी स्व-स्वरूपमें स्थिति है। क्यों जान देना? संसारमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं, जो पर संसारसे मन हटे कैसे ? यह तो बुरी तरह इससे नाशवान् न हो। फिर बार-बार जन्म लेना, दु:ख सहना चिपटा हुआ है। इसका एक ही उपाय है, जिसे और मरना, फिर जन्म लेना, दु:ख सहना और मरना— भगवान्ने गीतामें बतलाया है-अनित्य एवं सुखरहित क्या इसी चक्करमें रहना हमें प्रिय है? संसारके सच्चे रूप जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि आदि दु:खोंके संसारसे हटते ही मन मनमोहनसे जा मिलता है। चित्र उसे बार-बार दिखलाये जायँ। संसारके इन दारुण यही इसका स्वभाव है। भगवान् तो समग्र सौन्दर्य, चित्रोंको देखकर चित्त सहज ही उधरसे मुँह मोड़ लेगा माधुर्य, ऐश्वर्य, लावण्य, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदिके अनन्त भण्डार हैं। भगवान्में सारे सुख और सद्गुण तथा और स्वत: परमात्माका अनुसंधान करने लगेगा; क्योंकि वास्तवमें वह संसारको केवल इसीलिये अपनाये हुए है जगत्में सभी कुछ दु:ख और दुर्गुणरूप हैं-ऐसी चेतना कि उसमें उसे सुख भास रहा है। जब वह आँख हो जानेपर मनको भगवान्में लगानेमें जोर नहीं देना पसारकर देख लेगा कि यहाँ केवल जलन-ही-जलन है पड़ता। उसे तो बस सुख चाहिये—संसारमें मिले या भगवान्में। जब वह जान लेगा कि संसारमें सुख है ही तो फिर संसारके सुखोंका नाम ही न लेगा। जहाँसे मनको हटाना है, वहाँका दु:ख और जहाँ लगाना है, नहीं, दु:ख-ही-दु:ख है तो सहज ही भगवान्की ओर दौड़ेगा। पर यह केवल पाँच-सात मिनटके अभ्याससे वहाँका आनन्द उसे बार-बार बताया जाय। हमारे मनमें कुछ ऐसे संस्कार निश्चित हो गये हैं, जिनके कारण नहीं होगा। इसके लिये सतत प्रयत्नशील होना पड़ेगा। संसारके सुखोंमें ही हमारी समीचीन बुद्धि दृढ़ हो गयी संत-महात्माओंके चरित्र देखें और उनके साथ राजा-है। मनने संसारके विषयोंमें तदाकारता स्थापित कर ली महाराजाओंके जीवनकी तुलना करें। पता नहीं, कितने राजे-महाराजे पृथ्वीपर पैदा हुए और मिट्टीमें मिल गये, है, अत: वह उन्हें शीघ्र छोड़ना नहीं चाहता। मनुष्य जानता है कि संसारकी सभी वस्तुएँ विनाशशील हैं, पर आज हम उनका नामतक नहीं जानते और वे साधू-महात्मा, जिनके पास कौपीनके अतिरिक्त कुछ भी न अतः वे वियोगशील एवं दु:खदायी हैं; पर फिर भी संसारमें उसकी इतनी आसिक्त है कि एक क्षणके था, संसारमें अपनी दिव्य छटा छिटकाकर चले गये और वियोगमें भी उसके प्राण निकलने लगते हैं और वह आज भी संसार उनके प्रकाशसे प्रकाशित है। विषय-सुखोंके लिये हाय-हाय करने लगता है। उसे वह एक क्षण भी, जिसमें हमारा चित्त संसारकी ओरसे हटकर—उसे सर्वथा भुलाकर हरिमें लग जाता है, 'विष-भक्षण' की चाट-सी लग गयी है। वह बराबर ऐसा ही काम करता है, जिससे उसके दु:ख बढ़ते रहते कितना दिव्य, आनन्दमय, शान्तिमय, प्रेममय और सुखमय हो जाता है! यदि हम सदाके लिये संसारको भूलकर हैं और वह भवजालमें अधिकाधिक उलझता जाता है। भगवान्ने तो डंकेकी चोटपर कहा है-भगवान्में रम जायँ तो फिर आनन्दका क्या कहना? अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गीता ९।३३) 'इस अस्थायी और दु:खरूप संसारमें आकर मेरा (गीता ८। १४)

काशीके कुछ शिवलिंग (श्रद्धेय पं० श्रीलालिबहारीजी मिश्र) काशी तीनों लोकोंसे न्यारी मानी जाती है। यह विश्वेश्वर-लिंग मेरी सबसे उत्कृष्ट मूर्ति है (का०खं० पृथिवीपर स्थित होते हुए भी पृथिवीसे सम्बद्ध नहीं है ९९।२०)। इस विश्वेश्वर-लिंगके दर्शनके लिये सभी स्वयम्भू और स्थापित लिंग आते रहते हैं (का०खं०

और अध:स्थित होनेपर भी यह स्वर्ग आदि लोकोंसे उच्चतर है (काशीखण्ड १।२)। यहाँ जैसे चारों धाम,

सातों पुरियाँ, सभी देवता और सभी तीर्थ निवास करते हैं, वैसे सभी लिंग भी यहाँ निवास करते हैं। अत:

काशीके लिंगोंका विशद वर्णन तो सम्भव नहीं है,

तथापि यहाँ कुछ लिंगोंका परिचय दिया जा रहा है।

काशी यात्राओंकी नगरी है। वर्ष, अयन, ऋतू,

मास, पक्ष आदि अनेक यात्राएँ की जाती हैं। इनमें

नित्य-यात्रा बहुत ही आवश्यक मानी जाती है-

दृश्यो विश्वेश्वरो नित्यं स्नातव्या मणिकर्णिका। (काशीखण्ड १००।१०५)

अत: विश्वेश्वर-लिंगसे यह परिचय प्रारम्भ किया

जाता है। विश्वेश्वर-लिंग (विश्वनाथजी)

शास्त्रोंमें बताया गया है कि जो मणिकर्णिका-

तीर्थमें स्नानकर विश्वनाथजीका दर्शन करता है, वह शिवरूप हो जाता है, फिर उसका जन्म नहीं होता— स्नात्वा मुमुक्षुर्मणिकणिकायां

मृडानि गङ्गाहृदये त्वदास्ये। विश्वेश्वरं पश्यति योऽपि कोऽपि शिवत्वमायाति पुनर्न

(सनत्कुमारसंहिता) काशीखण्डमें तो यहाँतक कहा गया है कि

जीवनभर समस्त शिवलिंगोंकी पुजासे जो फल मिलता है, वह केवल एक बार विश्वेश्वर-लिंगके पूजनसे प्राप्त

हो जाता है—

सर्वलिंगार्चनात् पुण्यं यावज्जन्म यदर्ज्यते। सकृद् विश्वेशमभ्यर्च्य श्रद्धया तदवाप्यते॥

(काशीखण्ड ९६।३०)

भगवान विश्वनाथने स्वयं कहा है कि 'भूलोक, भुवर्लीक, स्वर्लीक, महर्लीक और जनलोकमें कहींपर विश्वेश्वर-लिंगके समान कोई लिंग नहीं है (का॰खं॰ म॰नं॰ डी॰ ३।७९)।
Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

९९।१९)। विश्वेश्वर-लिंगके स्मरणमात्रसे जन्मभरके पापोंका नाश हो जाता है (का०खं० ९९।२२)।'

इस तरह भगवान् शंकरने विश्वेश्वर-लिंगकी भूरि-भूरि महिमा बताकर पार्वतीजीके साथ स्वयं इस लिंगकी पूजा की और वे इसीमें लीन हो गये (का०खं०

९९।६२)। काशीकी नित्य-यात्रामें और चार लिंग हैं—(१) महेश्वर-लिंग (ज्ञानवापीके पश्चिम-दक्षिणकोण), (२) नन्दिकेश्वर-लिंग (यह लिंग गुप्त हो गया है), (३)

तारकेश्वर-लिंग-तारालोकसे यह तारकेश्वर-लिंग ज्योतीरूपमें आकर ज्ञानवापीमें विराजमान है। इस लिंगके पुजनसे तारक-ज्ञानकी प्राप्ति होती है (का०ख० ६९।५३-५४) तथा (४) महाकालेश्वर-लिंग

(ज्ञानवापीके दक्षिण-पूर्वकोणपर)। विश्वनाथ-अन्तर्गृहीमें आये लिंग

अन्तर्गृहीकी यात्रा यथाशक्ति प्रतिदिन की जाती है। इस यात्रामें निम्नलिखित लिंगोंकी पूजा होती है। काशी-खण्डके सौवें अध्यायमें अन्तर्गृहीका विधान है। १-मणिकर्णिकेश्वर—(यह लिंग गोमठ महल्लेके

मर्णिकर्णिकेश्वरके दर्शनसे गर्भकी यन्त्रणा मिट जाती है। काशीखण्डसे पता चलता है कि भगवान् शंकरने स्वयं अन्तर्गृहके पूर्वद्वारपर इस लिंगकी स्थापना की थी। २-कम्बलेश्वर—(कम्बलाश्वतरेश्वर) (गोमठ

अभयाश्रममें है। मकान-नम्बर सी०के० ८।१२)।

म०नं० सी०के० ८।१४)। ३-वासुकीश्वर—(सिन्धियाघाट, संकटाजीके दक्षिण म०नं० सी०के० ७।१५५)।

४-पर्वतेश्वर—(सिन्धियाघाट, म०नं० सी०के० ७।१५६)। ५-जरासन्ध्येश्वर—(मीरघाट गुप्त स्थानकी पूजा,

संख्या २]	काशीके व्	नुछ शिवलिंग
<u> </u>	*************	**************************************
७-दालभ्येश्वर—(मान-१	. ,	२४-कलशेश्वर—(शीतला गलीके आगे, म०नं०
८-शूलटंकेश्वर—(दशाश	वमेध-प्रयागघाटपर)।	७।१०६)।
९-वराहेश्वर—(दशाश्वर	मेध, म०नं० डी०	२५-चन्द्रेश्वर—(सिद्धेश्वरी मन्दिरके अन्दर, म०नं०
१७।१११)।		सी०के० ७।१२४)।
१०-ब्रह्मेश्वर—(बालमुव्	फ़न्दका चौहट्टा, बंगाल <u>ी</u>	२६-वीरेश्वर—(म०नं० सी० ७।१५८)।
टोला, म०नं० डी० ३३।६६-	-६७)।	वीरेश्वर-लिंगकी महिमा अद्भुत है। वाराणसीमें
११-अगस्तीश्वर—(अग	स्तकुण्डा, म०नं० डी०	अमित्रजित नामक एक राजा हो गये हैं। वे विष्णुके परम
३६।११)।		भक्त थे। उनकी पत्नी मलयगन्धिनी भी उन्हींकी तरह
१२-कश्यपेश्वर—(जंगम	मवाड़ी, म०नं० डी०	महान् भक्त थीं। पतिकी आज्ञा प्राप्तकर उन्होंने योग्य
३५।७७)।		पुत्रके लिये तृतीया-व्रतका अनुष्ठान किया। भवानीकी
१३-हरिकेशेश्वर—(जंग	मवाड़ी, म०नं० डी०	कृपासे उन्हें वीरेश्वर नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। मूल
३५।२७३ के दक्षिण)।		नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण माताने पुत्रको विकटादेवीके
१४-वैद्यनाथेश्वर—(कोव	दई चौकी, म०नं० डी०	चरणोंमें सौंप दिया। विकटादेवीने उस बच्चेको ब्राह्मी,
५०।२०)।		वैष्णवी आदि मातृगणोंका आशीर्वाद दिलाकर बहुत ही
१५-ध्रुवेश्वर—कोदई	चौकी, सनातन-धर्म-	योग्य बना दिया। १६ वर्षकी आयुमें माताओंने बालकको
विद्यालयके कोनेमें।		काशीके पंचमुद्रा नामक पीठपर पहुँचा दिया।
१६-गोकर्णेश्वर—(कोदर्	ई चौकी, दयलूकी गलीमें	काशी पहुँचकर वीरेश्वरने घोर तपस्या की। भगवान्
म०नं० डी० ५०।३४ ए के	दक्षिण)।	शंकर वीरेश्वरके सामने लिंग-रूपसे प्रकट हुए और उससे
१७-हाटकेश्वर—(हड़हा	ासराय, म०नं० सी०के०	वरदान माँगनेको कहा। जनकल्याणके लिये वीरेश्वरने
४३।१८९)।		वरदानमें माँगा कि आप संसारके तापोंके नाशके लिये यहाँ
१८-अस्थिक्षेपतडागेश्वर-	—(बेनियाबाग, म०नं०	लिंगरूपसे सदा विराजमान रहें और मन्त्र-जप आदि
सी०के० ४८।४५)।		साधनोंके बिना ही जनताको अभीष्ट प्रदान करें—
१९-कीकसेश्वर—(हड़हा	महल्ला, म०नं० सी०के०	अस्मिँल्लिङ्गे स्थितः शम्भो कुरु भक्तसमीहितम्।
४८।४५)।		विना मुद्रादिकरणं मन्त्रेणापि विना विभो॥
२०-भारभूतेश्वर—(राजा	दरवाजा, म०नं० सी०के०	(का०खं० ८३।५०)
५४।४४)।		२७-विद्येश्वर—(नीमवाली ब्रह्मपुरी, म०नं०
२१-चित्रगुप्तेश्वर—(मच	छरहट्टा फाटक, म०नं०	सी०के०ए० २।४१)
40100)1		२८-अग्नीश्वर—(पटनी टोला, म०नं० सी०के०
२२-पशुपतीश्वर—(पशुप	पतीश्वर मुहल्ला, म०नं०	१।२१)।
सी०के० १३।६६)।	-	२९-नागेश्वर—(भोंसला घाट, म०नं० सी०के०
मणिकर्णिकाके पास पाशु	पित तीर्थ है। इस तीर्थमें	२।१)।
भगवान् शंकरने ब्रह्मा आदि दे	देवताओं एवं ऋषियोंको	३०-हरिश्चन्द्रेश्वर—(संकटाघाट, म०नं० सी०के०
पशुओं (जीवों)-के पाश हर	रनेवाले पाशुपत योगका	७।१६६)।
उपदेश दिया था। इसके बाद	•	हरिश्चन्द्र-तीर्थमें पितरोंके तर्पण करनेसे उसके
विराजित हो गये हैं (का०खं		पूर्व-पुरुष १०० वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं और
२३-पितामहेश्वर—(शीत		वाञ्छित फल प्रदान करते हैं। जो श्रद्धापूर्वक हरिश्चन्द्र-
७।९२)।		तीर्थमें स्नान करके हरिश्चन्द्रेश्वरको प्रणाम करता है,

२४ कल्प	गण [भाग ९१

वह सत्यसे च्युत नहीं होता (का॰खं॰ ६१।७५—	४१-भवानीशंकर—अन्नपूर्णाजीके बगलमें राममन्दिर
(9C) I	जगन्नाथके बगलमें)।
३१-वसिष्ठेश्वर—(सिन्धियाघाट, म०नं० सी०के०	४२-राजराजेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजार,
७।१६१)।	ढुंढिराज गली म०नं० सी०के० ३५।३३)।
३२-वामदेवेश्वर—(सिन्धियाघाट, म०नं० सी०के०	४३-लांगलीश्वर—(खोवा बाजार, म०नं० सी०के०
७।१६१)।	2618)1
३३-करुणेश्वर-(लाहौरी टोला, म०न० सी०के०	४४-नकुलीश्वर—(अक्षयवट, हनुमान्जीमें, म०नं०
38180)1	सी॰के॰ ३५।२१)।
३४-त्रिसंधीश्वर—(लाहौरी टोला, म०नं० सी०के०	४५-परान्नेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें,
38180)1	म॰नं॰ सी॰के॰ ३५।३४)।
३५-धर्मेश्वर—(धर्मकूपके पास, म०नं० डी०	४६-परद्रव्येश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें,
२।२१)।	म०नं० सी०के० ३५।३४)।
भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे बताया है कि धर्मेश्वर-	४७-प्रतिग्रहेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें,
लिंगके स्मरण, दर्शन, स्पर्श और पूजनसे असीम	म०नं० सी०के० ३५।३४)।
कल्याण हो जाता है (का०खं० ७८।४३—४५)।	४८-निष्कलंकेश्वर—(ज्ञानवापीके पश्चिम बाजारमें,
यहींपर यमराजने समाधि लगाकर 'दण्डाधिकारी' पदको	म०नं० सी०के० ३५।३४)।
प्राप्त किया था। भगवान् विश्वनाथने धर्मराजको वरदान	४९-मार्कण्डेयेश्वर—(म०नं० सी०के० ३६।१०)।
देते हुए कहा कि—'धर्मराज! तुमने काशीमें इस	५०-अप्सरेश्वर—(राधा-कृष्णकी धर्मशाला, म०नं०
धर्मेश्वर-लिंगकी आराधना की है, अत: इस लिंगके	सी०के० ३०।१)।
दर्शन, स्पर्श और पूजनसे थोड़े ही समयमें सिद्धि प्राप्त	५१-गंगेश्वर—(ज्ञानवापी गुप्त)।
होगी (का०खं० ७८।४६)। यदि हजारों पाप करनेवाले	केदारेश्वर-लिंग
भी इस धर्मेश्वर-लिंगका दर्शन कर लें तो उन्हें नरकका	काशीमें केदारेश्वरके चार लिंग हैं। प्रसिद्ध केदार-
क्लेश नहीं भोगना पड़ता (का०खं० ७८।४८)। कार्तिक	लिंग केदारघाटपर स्थित है। इस लिंगपर एक बड़ी-सी
मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिमें व्रत करके रात्रि-	रेखा बनी हुई है। काशी-केदार-माहात्म्यसे पता चलता
जागरण कर लिया जाय तो मोक्ष प्राप्त होता है	है कि यह रेखा राजर्षि मान्धाताने मूँगकी खिचड़ीमें
(का०खं० ७८।५५)।	इसलिये लगायी थी कि इसका एक भाग अतिथिको
३६-चतुर्वक्त्रेश्वर—(शकरकन्द गली, म०नं० डी०	दिया जा सके।
७।१९ में)।	राजर्षि मान्धाता चौथे वयस्में काशी आ गये थे।
३७-ब्राह्मीश्वर—(शकरकन्द गलीमें ही आगे म०नं०	उन्होंने प्रतिदिन पंचकोशीका नियम ग्रहण किया। नित्य-
डी० ७।६ में)।	क्रिया करके वे पंचकोशीकी यात्रापर बिना कुछ खाये
३८-मन:प्रकामेश्वर—(साक्षीविनायकके आगे म०नं०	निकल जाया करते थे। शामको लौटकर अतिथिको
डी० १०।५० में)।	खिलाकर भोजन किया करते थे।
३९-ईशानेश्वर—(कोतवालपुरा, बाँसफाटक सिनेमाके	एक दिन मान्धाताको आकाशवाणी सुनायी पड़ी।
बगलकी गली, म०नं० सी०के० ३७।६९ वर्तमानमें	आकाशवाणीका आदेश था कि 'मान्धाता आगे भोजन
शापुरीमाल-परिसरमें)।	करके यात्रा किया करें।' मान्धाता सन्देहमें पड़ गये।
४०-चण्डी-चण्डीश्वर—(कालिकागली, म०नं०	जिस नियमके पालनसे मान्धाताको आकाशवाणी-जैसी
डी० ८।२६)।	दुर्लभ नादको उपलब्धि हुई थी, उसी नियमको वह

संख्या २] काशीके व्	नृष्ठ शिवलिंग २५
**************************************	. * * * * * * * * * * * * * * * * * * *
तोड़नेका आदेश दे रही थी। मान्धाताने अपना सन्देह	दृष्ट्वा केदारशिखरं पीत्वा तत्रत्यमम्बु च।
ऋषियोंके सामने रखा। ऋषियोंने निर्णय दिया कि	सप्तजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥
'मान्धाता' आकाशवाणीका ही पालन करें। ऋषियोंने	(का०खं० ७७।८)
कहा कि तुम कुछ खाकर तैयार हो जाओ। हमलोग भी	भौमवती अमावास्यामें यदि केदार-कुण्डपर श्राद्ध
तुम्हारे साथ ही यात्रा करेंगे।	किया जाय तो गया-श्राद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रहती—
मान्धाता केदारघाट लौट आये और शीघ्रतामें	भौमवारे यदा दर्शस्तदा यः श्राद्धदो नरः।
मूँगकी खिचड़ी तैयार की। उसमें लकीर लगाकर आधा	केदारकुण्डमासाद्य गयाश्राद्धेन किं ततः॥
भाग अतिथिके लिये निश्चित कर दिया। किंतु इतना	(का०खं० ७७।५९)
सबेरे अतिथिका मिलना कठिन हो रहा था। इसी बीच	केदारेश्वरकी अन्तर्गृहीमें लगभग सवा सौ शिवलिंग
ऋषिलोग आ पहुँचे। मान्धाता असमंजसमें पड़ गये।	आते हैं, उनका प्रत्येकका विवरण विस्तारके भयसे नहीं
यह बात उन्हें खल रही थी कि ऋषिलोग उनकी	दिया जा रहा है।
प्रतीक्षामें बैठे हैं। वे चिन्तित होकर भगवान्को पुकारने	ओंकारेश्वर-लिंग
लगे। इसी बीच कोई पुरुष उन्हें दीख पड़ा। उसने	काशीमें अनेक लिंग हैं। यहाँ जितने लिंग स्थापित
आकर आतिथ्य स्वीकार कर लिया। जब मान्धाता उनके	किये गये हैं, वे दृश्य हों अथवा अदृश्य, दुर्व्यवस्थामें
भागकी खिचड़ी निकालने लगे, तब उनकी अँगुलियाँ ही	पड़े हों या कालचक्रकी महिमासे टूट-फूट गये हों,
उसमें नहीं धँस रही थीं। वह तो ठोस पत्थर बन गयी	सर्वथा पूजनीय हैं। भगवान् शंकरने इनकी गिनती की
थी। मान्धाता दोहरी चिन्तामें पड़कर भगवान्को पुकारने	थी। वे सौ परार्ध संख्यातक ही गिन पाये थे (का०खं०
लगे। शीघ्र ही उन्हें दीख गया कि वह अतिथि	७३ । २४–२५) ।
प्रकाशपुंज बनकर उस खिचड़ीमें प्रविष्ट हो गया है। वे	ओंकारेश्वरका लिंग अमरकंटक-क्षेत्रसे लाया गया
भगवान् शंकर ही थे। उन्होंने मान्धाताको प्रत्यक्ष दर्शन	है। इनके प्रादुर्भावकी कथा है कि ब्रह्माजीने आनन्दवनमें
दिया। ऋषिलोग भी दर्शन पाकर हर्षसे उल्लसित हुए।	उग्र समाधि लगाकर तपस्या की। हजार युग बीतनेपर
भगवान्ने मान्धाताको तीन वरदान दिये—	सातों पातालोंको फोड़कर दिग्-दिगन्तरोंको प्रकाशित
(१) केदारखण्डमें भैरवी यातना नहीं भोगनी पड़ेगी।	करती हुई एक ज्योति प्रकट हुई। भूमिके फटनेसे जो
(२) काशीका अपराध, शिवका अपराध और	चरचराहटकी आवाज हुई, उससे ब्रह्माकी समाधि खुल
शिव-भक्तका अपराध—ये तीनों अपराध भी इस	गयी। वह ज्योति ओंकाररूपमें थी। वही लिंग-रूपसे
केदारलिंगके दर्शनसे निवृत्त हो जायँगे।	आज भी जनताका कल्याण कर रहे हैं। ब्रह्माण्डमें
(३) उक्त तीनों अपराध करनेवालोंको केदार-	जितने तीर्थ हैं, वे सब वैशाखमासके शुक्ल पक्षकी
लिंगका दर्शन नहीं होता था। तीसरे वरदानसे यह दर्शन	चतुर्दशीको ओंकारेश्वरका दर्शन करने आते हैं—
सर्वसुलभ हो गया।	ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सर्वतः।
केदार-लिंगके दर्शनका बहुत महत्त्व है। पार्वतीजीने	तानि वैशाखभूतायामायान्त्योङ्कृतिदर्शने॥
बताया है कि जो केदारेश्वरकी यात्राकी इच्छा करता है,	(का०खं० ७४।१००)
उसके जन्मभरके संचित पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते	भगवान्ने श्रीमुखसे कहा है—'हे ब्रह्मन्! मैं
हैं (का०खं० ७७।४)। यदि कोई घरमें भी रह करके	ओंकारेश्वरलिंगमें सदा स्थित रहूँगा और पूजकोंको मोक्ष
सन्ध्याके समय तीन बार केदारका नाम ले लेता है तो	दिया करूँगा—
उसे केदारकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है (का०खं०	अस्मिल्लिङ्गे सदा ब्रह्मन् स्थास्यामीति विनिश्चितम्।
७७।७)। केदारेश्वरके मन्दिरका शिखर देख वहाँका	दास्यामि च सदा मोक्षमेतिल्लङ्गार्चकाय वै॥
जल पी लेनेसे सात जन्मोंके पाप छूट जाते हैं—	(का०खं० ७३।१७३)

सौसे अधिक शिवलिंग जाता है। यह लिंग कलियुगरूपी महाज्वालाका नाश ओंकारेश्वरकी अन्तर्गृहीमें सौसे अधिक शिवलिंग कर देता है और जीवनको जीवन बना देता है-

मृत्युंजयेश्वर वृद्धकालेश्वरसे दक्षिण अपमृत्युका नाश करनेवाला

आते हैं। कुछ प्रमुख लिंगोंका परिचय दिया जाता है—

मृत्युंजय महादेव (मृत्य्वीश) नामक लिंग है। इस लिंगके दर्शन-पूजनसे घोर-से-घोर रोगादिकी निवृत्ति हो जाती है।

(का०खं० ९७। १२९)

वृद्धकालेश्वर

मृत्यंजय महादेवके मन्दिरमें ही वृद्धकालेश्वर-लिंग है। इस लिंगकी पूजासे महाकाल भी निवृत्त हो

दर्शन कर लेनेसे किसी बातका सोच नहीं रह जाता

७५। २६)।

(का०खं० ७५।१२)। त्रिलोचन-लिंग सब लिंगोंमें

(ब्रह्मवैवर्तपु०, त्रिस्थलीसेतु० पृ० ११७)

वृद्धकालेश्वरं लिङ्गं महाकालनिवारणम्।

कलिकालमहाज्वालाज्वालं जीवनजीवनम्॥

त्रिलोचनेश्वर-लिंग

पिलपिलातीर्थमें स्नान करके त्रिलोचन-महादेवका

उसी तरह श्रेष्ठ है, जैसे तारावलियोंमें चन्द्र (का०खं०

भाग ९१

काशीमें गंगालाभसे मुक्ति

काशीमें एक साध्वी वृद्धा विधवा रहती थीं। हम उन्हें 'खालिसपुराकी माँ' के नामसे जानते हैं। सब

प्रकारसे सम्बलहीन होकर केवल धर्मके ऊपर निर्भर रहकर वे काशीसेवन करती थीं। हमारी धारणा है कि

वे धार्मिक जीवनमें बहुत ऊँची भूमिकापर स्थित थीं। कुछ समयतक उनके पास रहनेसे या उनके वाक्य श्रवण करनेसे मन एक अपूर्व धर्मभावसे पूर्ण हो जाता था। उनके जीवनकी निम्नलिखित घटना मैंने कई

मित्रोंके साथ उन्हींके मुखसे सुनी थी। उसे उन्हींके शब्दोंमें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'उस समय मेरे स्वामी जीवित थे। एक बूढ़ी बिल्ली कहींसे आकर हमारे घरमें रहने लगी। उसमें विशेषता

यह थी कि वह हमारे साथ निरामिष आहार करती, मांस खानेके लोभमें दूसरी जगह कहीं नहीं जाती एवं

बिल्लीको लाल कपड़ेके एक टुकड़ेमें लपेट दिया। वे उसको गंगामें बहा आये और आकर मुझसे बोले कि

एकादशीके दिन कुछ भी नहीं खाती थी। ज्यादातर मेरे पास पड़ी रहती। काल-क्रमसे उस बिल्लीकी मृत्यु हुई और उसे सड़कपर एक तरफ फिंकवा दिया गया, जिससे उसे डोम आकर उठा ले जायँ। पर मैंने सोचा, डोम उसे न जाने कहाँ ले जाकर फेंकेगा? ऐसी हिंसाशून्य सद्गुणी बिल्ली तो देखनेमें नहीं आती, क्या इसका शव गंगामें नहीं डाला जा सकता?

स्वामीसे जब मैंने यह कहा तो वे पहले कुछ नाराज-से हुए। बिना मतलब उन्हें एक दुर्गन्धमय मृत पशुको ले जाना ठीक नहीं मालूम पड़ा, परंतु पीछे मेरे हृदयकी वेदनाका अनुभवकर वे उसे ले जानेको राजी हो गये। मैंने

'बिल्लीको तुम्हारी मनचाही गंगाप्राप्ति हो गयी।' इस घटनाके पाँच-छः दिन बाद अकस्मात् एक दिव्य मनुष्याकृति

सधवा रमणी, जो लाल पाड़की साड़ी पहने थी और जिसकी माँगमें सेंदुर भरा था, मेरे समीप आकर बैठ गयी।

मैंने पूछा—'बहन! तुम कौन हो ? उसने कहा—मैं वही बिल्ली हूँ, जिसे तुमने दया करके गंगाजीमें प्रवाहित करा दिया था; अब मैं मुक्त होकर जा रही हूँ, इसलिये जानेके पहले तुमसे मिलने आयी हूँ।' यह कहकर वह तुरंत अन्तर्धान हो गयी। मैं अपने आसनपर बैठी रह गयी। मैंने देखा, कितने ही देवी-देवता उसके आगमनकी प्रतीक्षामें

बैदे हैं, न जाने किस पापसे बेचारीको कुछ दिनोंतक बिल्लीकी योगिमें रहना ग्रहा। 'ट्रीम्ह्यू है राक्र inash/Sh

संख्या २] भक्त रामनारायण भक्तगाथा— भक्त रामनारायण भक्त लाला रामनारायणजीकी जन्मभूमि तो पंजाब करने लगे और भाँति-भाँतिसे उन्हें सताने, परेशान करने थी, परंतु वे बहुत समयसे आकर बस गये थे मोक्षदायिनी और हानि पहुँचानेका प्रयत्न करने लगे। गालियाँ देने, भगवान् शंकरकी काशीपुरीमें। उनके साथ पंजाबके कई गुण्डोंसे पिटवाने, आग लगा देने और व्यापारमें नुकसान लोग और भी आये थे। रामनारायणजी भगवान् शंकरके पहुँचाने आदिके रूपमें वैर-सम्पादनके भाँति-भाँतिके अनन्य भक्त थे। प्रतिदिन बहुत तड़के ही गंगा-स्नान प्रयत्न दयालीरामकी ओरसे चलने लगे! करके वे भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करते और फिर एक दिन रामनारायणजी गंगास्नान करके आ रहे घर लौटकर पार्थिवपूजन, शिवसहस्रनामका पाठ, थे। दयालीरामने अचानक स्वयं आकर उनके दो जूते महामृत्युंजयमन्त्रका भक्ति-श्रद्धापूर्वक जप करते थे। लगा दिये। रामनारायणजी हँसते हुए चले गये, परंतु मध्याह्नतक उनका पूजा-पाठ चलता। उनकी पत्नी उन्हें अपने साथी दयालीरामकी इस गिरी हुई हालतपर शारदा और पुत्र शम्भुशरण भी भगवान् शिवजीके बड़े बड़ी दया आयी। वे उनकी दु:स्थितिके कारण दुखी हो भक्त थे। कल्याणकारी 'नमः शिवाय' का अनवरत गये। अपने अपमान और जूतोंकी मारके कारण नहीं, जप तो परिवारभरका स्वभाव ही बन गया था। आश्तोष परंतु दयालीरामकी मानसिक दुर्भावनाके कारण वे भगवान् शंकरकी कृपासे रामनारायणजीका व्यापार चमका चिन्तात्र हो गये। उन्होंने सोचा, कैसे दयालीरामजीकी और वे थोड़े ही दिनोंमें सुख-समृद्धिसे सम्पन्न हो गये। वृत्ति ठीक हो। उन्होंने मन-ही-मन उनसे विशेष प्रेम धनसे अभिमान और स्वार्थ बढा करता है, परंतु करनेका संकल्प किया और संकल्पानुसार कार्य भी श्रीशंकरजीकी कृपासे यहाँ सर्वथा विपरीत परिणाम आरम्भ कर दिया। यह नियम है कि जब हम किसीके हुआ। श्रीरामनारायणजीके ज्यों-ज्यों सुख-समृद्धि और सम्बन्धमें अपने मनमें द्वेष और वैरके विचार रखते हैं, धन-ऐश्वर्य बढ़ा, त्यों-ही-त्यों उनमें नम्रता, विनय, तब वे हमारे विचाररूपी राक्षस उसकी ओर जाते हैं और त्यागकी भावना और अन्यान्य दैवी-सम्पत्तिके गुण बढ़ते उसके मनमें भी द्वेष और वैरके विचार उत्पन्न करके गये। सत्पुरुषोंके पास आये हुए न्यायोपार्जित धनका उनको फिर अपनी ओर खींचते हैं। स्वार्थ, क्रोध, हिंसा, सुकृत और सेवामें ही सदुपयोग हुआ करता है, इस मद और लोभ आदिके विचारोंका भी ऐसा ही असर सिद्धान्तके अनुसार रामनारायणजीका धन सत्कार्योंमें होता है। इस प्रकार परस्परमें अशुभ विचार बढ़ते रहकर लगने लगा। इससे उनकी कीर्ति भी बढ़ी। तमाम वातावरणको और तमाम जीवनको अशुभ बना पंजाबसे उनके साथ आये हुए लोगोंमें एक लाला देते हैं। इसके बदलेमें यदि किसीके प्रति प्रेमके विचारोंका पोषण हो तो वे भी वहाँतक पहुँचते हैं और उसके मनमें दयालीराम थे। वे रामनारायणजीकी उन्नतिसे मन-ही-उभडे हुए द्वेषको दबाकर प्रेमके भाव पैदा करते हैं। यों मन जला करते। यद्यपि रामनारायणजी हर तरहसे स्वाभाविक ही उनके साथ बड़ी उदारता और प्रीतिका यदि बार-बार प्रेमके विचारोंको बढ़ा-बढ़ाकर भेजा जाय व्यवहार करते, फिर भी लाला दयालीरामकी द्वेषबुद्धि तो अन्तमें उसका द्वेष मिट जाता है और वह भी प्रेम बढ़ती गयी। श्रीरामनारायणजीको इस बातका कुछ भी करने लगता है। प्रेम प्रेमका और द्वेष द्वेषका जनक है। लाला दयालीरामके मनमें वैर था, परंतु रामनारायणजीके पता नहीं था, परंतु दबी आग कबतक रह सकती है। ईंधन और हवाका झोंका पाते ही धधक उठती है। इसी मनमें अत्यन्त सुदृढ़ और महान् प्रेम भरा था। अतएव प्रकार मौका पाते ही लाला दयालीरामकी द्वेषाग्नि भडक दयालीरामके द्वेषके विचारोंका रामनारायणजीके प्रेमके उठी। अब तो वे खुल्लमखुल्ला रामनारायणजीसे वैर बढे हुए विचारोंपर कोई असर नहीं हुआ; बल्कि वे

विचार प्रेमके प्रबल विचारोंसे दबने लगे और उत्तरोत्तर इतना उद्वेग हो रहा है। मैं ही तो उनके जीवनकी क्षीणशक्ति होकर लौटने लगे। साथ ही रामनारायणजीके अशान्ति और व्यथाका कारण हूँ। मैं यह भी कैसे कह सकता हूँ कि मेरे मनमें धन-सम्मानकी कामना नहीं थी बढ़े हुए निर्मल और प्रबल प्रेमके विचार लगातार वहाँ पहुँचने लगे और उनके हृदयके अशुभ भावोंको क्रमशः और मैं इसका केवल स्वामीकी सेवामें ही सदुपयोग कर रहा हूँ। प्रभो! अपना पाप मुझे दीख नहीं रहा है। यह

मिटाने लगे। अब लाला दयालीरामको अपने कियेपर बीच-बीचमें पश्चात्ताप भी होने लगा। इधर लाला रामनारायणजीको धैर्य नहीं हुआ, वे शीघ्र-से-शीघ्र दयालीरामको शुभ स्वरूपमें देखनेके लिये आतुर हो गये। अतएव उन्होंने एक दिन रातको एकान्तमें आर्त होकर भगवान् आशुतोषसे करुण प्रार्थना की-'मेरे स्वामिन्! मुझे अपने साथी लाला दयालीरामजीके इस पतनका बड़ा ही दु:ख है। आप अन्तर्यामी हैं; यदि मेरे मनमें उनके प्रति जरा भी द्वेष रहा हो या अब भी कहीं हो तो मुझे उसका कड़ा दण्ड दीजिये; परंतु उनके मनमें शान्ति, सौहार्द और प्रेम पैदा कर दीजिये। मेरे नरकाग्निकी पीड़ा भोगनेसे भी यदि उनका चित्त शुद्ध

होता हो तो मेरे भगवन्! शीघ्र-से-शीघ्र इसकी व्यवस्था कीजिये, आपके दिये हुए धन-ऐश्वर्य और मान-कीर्तिसे यदि उनके मनमें दु:ख होता हो तो प्रभो! अपनी इन चीजोंको आप तुरंत वापस ले लीजिये। मुझे तुरंत राहका भिखारी और सर्वथा दीन-हीन, अपमानित बना दीजिये। ऐसा धन-वैभव और यश-सम्मान किस कामका, जो

किसी भी प्राणीके दु:खका कारण हो। फिर भगवन्! जहाँतक, मेरे मनका मुझे पता है, मैंने तो कभी स्वामीसे धन-सम्मानके लिये प्रार्थना भी नहीं की थी। मैं तो स्वामीकी दी हुई वस्तुओंको नित्य स्वामीकी ही सम्पत्ति मानकर स्वामीके आज्ञानुसार स्वामीकी सेवामें ही लगानेका प्रयत्न करता रहा हूँ, परंतु ऐसा कहना भी मेरा अभिमान

ही है। मैं क्या प्रयत्न करता हूँ। स्वामी ही तो सब कुछ करा रहे हैं। इस समय भी मैं जो कुछ कह रहा हूँ, इसमें भी तो दयामय स्वामीकी ही प्रेरणा है। प्रभो! प्रभो! मैं

दम्भ करता हूँ, मेरे मनमें अवश्य ही कोई दोषबुद्धि, कोई

अशान्ति मिटेःःः।' हृदयकी सच्ची प्रार्थना निश्चय ही सफल होती है। फिर भगवान् शंकर तो आशुतोष ठहरे। प्रार्थना करते-करते ही रामनारायणजी समाधिस्थ हो गये। उन्होंने

मेरा और भी अपराध है। मेरे औढरदानी महादेव! मुझपर

आपको कितनी कृपा है। मैं क्या कहूँ ? स्वामीकी कृपा

और मेरी नालायकीमें मानो होड़ लग गयी है! अब जैसा स्वामी उचित समझें, वैसा ही हो, परंतु मेरा मन बार-

बार इस दु:खसे रो रहा है कि कैसे दयालीरामजीकी

भाग ९१

देखा—भगवान् वृषभवाहन सामने उपस्थित हैं। बड़ी ही उज्ज्वल कर्पूरधवल कान्ति है, सिरपर पिंगल जटाजूट है।

गलेमें वासुकि शोभा पा रहे हैं। एक हाथमें त्रिशूल, दूसरेमें डमरू, तीसरेमें रुद्राक्षकी माला है और चौथे हाथसे अभयदान दे रहे हैं। कटिमें रीछकी छाल पहने हैं। विशाल नेत्रोंसे मानो कृपासुधाकी वर्षा हो रही है। होठोंपर

पापभावना रही होगी। मेरा मन सचमुच ही किसी छिपे मुसकान है। देवदेव श्रीशंकरजीके दर्शन पाकर लाला अपराधसे भरा होगा, तभी तो मेरे कारण मेरे साथीको श्रीरामनारायणजी कृतार्थ हो गये। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु

श्रीशिवसूक्तिः संख्या २] बहने लगे, शरीर रोमांचित हो गया, आनन्दातिरेकसे वाणी पवित्र होता गया है। आज तो तेरी प्रार्थनासे वह सर्वथा बन्द हो गयी। भगवान्ने उसके मस्तकपर अभयहस्तारविन्द पवित्र हो गया है। तुझे धन्य है, जो अपनी सद्भावनासे रखा और कहा—'रामनारायण! तेरी श्रद्धा, भक्ति और तू असतोंको सत् बना रहा है। मैं तुझपर बहुत ही प्रसन्न निष्काम सेवाने मुझको अपने वशमें कर लिया है। यह हूँ! मैं जानता हूँ तेरी धन-सम्मानमें जरा भी आसक्ति दयालीराम पूर्वजन्ममें पिशाच था, इसके पहले जन्ममें वह नहीं है। इसीसे तो उनके द्वारा मेरी आदर्श सेवा हो रही है। आसक्तिमान् पुरुषके धनसे मेरी (भगवान्की) सेवा दक्षिणापथमें ब्राह्मण था और तू वहींपर एक व्यापारी था। तेरी बुद्धि उस समय भी श्रेष्ठ थी। वह ब्राह्मण होनेपर नहीं बन सकती। तू सुख-शान्तिपूर्वक यहाँका कर्तव्य पूरा भी कुसंगमें पड़कर मद्य-मांसका सेवन करता था और करके मेरे दिव्यलोकमें जायगा। निश्चिन्त रहकर मेरा डाके डालकर धन कमाया करता था। उसमें बड़ी क्रूरता भजन करता रह।' आ गयी थी। एक दिन उसने तेरे घरमें डाका डाला। भगवान् श्रीशंकरजी इतना कहकर ज्यों ही अन्तर्धान तुने उसके साथ उस समय भी बड़ा सद्व्यवहार किया हुए, त्यों ही लाला रामनारायणजीकी समाधि टूटी। और मनमाँगा धन देनेके बाद उसे मेरी भक्ति और 'नम: उन्होंने देखा—दयालीराम चरणोंमें पड़े रो रहे हैं। शिवाय' मन्त्र-जाप करनेका उपदेश दिया। तेरे सद्व्यवहारका रामनारायणजीने उनको भगवान् शंकरका कृपापात्र समझकर उसपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह मेरी पूजा करने लगा। उठा लिया। दयालीराम चरण छोड़ना नहीं चाहते थे। एक बार रामेश्वरमें जाकर उसने मुझपर जल और बार-बार अपनी करतूतोंका वर्णन करते हुए कातर कण्ठसे बिल्वपत्र चढ़ाये थे। अपने पापोंके कारण वह दूसरी रो-रोकर क्षमा माँग रहे थे। उनको सच्चा पश्चात्ताप था। योनिमें पिशाच हुआ, परंतु तेरे संग तथा मेरी पूजाके भगवान् शंकरजीकी कृपा, रामनारायणजीके सद्भाव और फलस्वरूप वह योनि दस ही वर्षोंमें छूट गयी और उसने सच्चे पश्चात्तापकी आगने उनके समस्त पाप और पुन: क्षत्रिय-कुलमें जन्म धारण किया। पिछले मानवशरीरमें पापबीजोंको जला दिया। श्रीरामनारायणजीने उठाकर उसका जीवन द्वेष, हिंसा, क्रोध और वैरकी भावनाओंका उन्हें हृदयसे लगा लिया और बहुत तरहसे सान्त्वना देकर घर बना हुआ था। निरीहोंको सताना और भला तथा श्रीशंकरजीकी भक्तिका उपदेश देकर विदा किया। करनेवालोंका भी बुरा करना उसका स्वभाव बन गया श्रीदयालीरामके मनमें पूर्वजन्मकी स्मृति आ गयी। था। उन्हीं संस्कारोंके कारण उसने इस जन्ममें भी तुझसे वे 'नम: शिवाय' मन्त्रका जाप तथा भक्तिपूर्वक श्रीशंकरजीकी उपासनामें लग गये। रामनारायणजीके साथ वैर-विरोध किया, परंतु तेरा हृदय सर्वथा निर्वेर तथा पवित्र प्रेमसे परिपूर्ण होनेके कारण उसके वैरने तुझपर तो कोई उनका प्रेम अट्रट हो गया। दोनों साथी भगवान् असर किया ही नहीं, प्रत्युत तेरे प्रेमसे उसका हृदय क्रमश: श्रीविश्वनाथजीकी सेवामें समर्पण करके कृतकृत्य हो गये। -श्रीशिवसूक्ति:-जय जय हे शिव दर्पकदाहक दैत्यविघातक भूतपते दशमुखनायक शायकदायक कालभयानक भक्तगते। त्रिभुवनकारकधारकमारक संसृतिकारक धीरमते हरिगुणगायक ताण्डवनायक मोक्षविधायक योगरते।। हे मदनदाहक! दैत्यकदन! भूतनाथ! हे दशशीश-स्वामिन्! हे [अर्जुनको] धनुष देनेवाले! हे कालको भी भयभीत करनेवाले! हे भक्तोंके आश्रय! हे त्रिलोकीकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले! हे जगद्रचियता धीरधी महादेव! हे हरिगुणगायक ताण्डवनायक मोक्षप्रदायक योगपरायण शंकर! आपकी जय हो! जय हो। [श्रीपूर्णचन्द्रकृत उद्भटसागर]

ज्योतिर्लिग-परिचय द्वादश ज्योतिर्लिगोंके अर्चा-विग्रह इस विश्वमें जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है तथा द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।

जिसका वर्णन एवं स्मरण किया जाता है, वह सब भगवान् सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं

शिवका ही रूप है। करुणासिन्धु अपने आराधकों, भक्तों तथा श्रद्धास्पद साधकों और प्राणिमात्रकी कल्याणकी

कामनासे उनपर अनुग्रह करते हुए स्थल-स्थलपर अपने विभिन्न स्वरूपोंमें स्थित हैं। जहाँ-जहाँ जब-जब भक्तोंने

भक्तिपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया, तहाँ-तहाँ तब-तब वे अवतार लेकर भक्तोंका कार्य सम्पन्न करके स्थित

हो गये। लोकोंका उपकार करनेके लिये उन्होंने अपने

स्वरूपभूत लिंगकी कल्पना की। आराधकोंकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन-उन स्थानोंमें ज्योतीरूपमें आविर्भृत हुए और ज्योतिर्लिंग-रूपमें सदाके लिये विद्यमान हो गये। उनका ज्योति:स्वरूप सभीके लिये वन्दनीय, पूजनीय एवं नमनीय है। पृथिवीपर वर्तमान शिवलिंगोंकी संख्या

असंख्य है तथापि इनमें द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी प्रधानता है। इनकी निष्ठापूर्वक उपासनासे पुरुष अवश्य ही परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है अथवा वह शिवस्वरूप हो जाता है। शिवपुराण तथा स्कन्दादि पुराणोंमें इन ज्योतिर्लिंगोंकी

कहा गया है कि इनके नाम-स्मरणमात्रसे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं, साधक शुद्ध निर्मल अन्त:करणवाला हो जाता है और उसे अपने सत्य-स्वरूपका बोध हो जाता है

महिमाका विशेषरूपसे प्रतिपादन हुआ है। यहाँतक भी

तथा वह विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय होकर सर्वथा कृतार्थ हो जाता है। यहाँ इन्हीं द्वादश ज्योतिर्लिगोंका संक्षिप्त

विवरण दिया जाता है— सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मिल्लकार्जुनम्।

उज्जियन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्। वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥ वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।

(शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता १।२१—२४) अर्थात् (१) सौराष्ट्र-प्रदेश-(काठियावाड्)-में

सोमनाथ, (२) श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, (३) उज्जैनमें महाकाल, (४) ओंकारमें परमेश्वर, (५) हिमाचलपर केदार, (६) डाकिनीमें भीमशंकर, (७) काशीमें विश्वेश्वर,

(१०) दारुकावनमें नागेश, (११) सेतुबन्धमें रामेश्वर और (१२) शिवालयमें स्थित घुश्मेश्वर—इन बारह ज्योतिर्लिगोंके नामोंका जो प्रात:काल उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। आगे इन्हींका संक्षेपमें

वर्णन दिया जा रहा है-



(८) गौतमीतटपर त्र्यम्बक, (९) चिताभूमिमें वैद्यनाथ,

श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिंग गुजरात प्रान्तमें प्रभास-

क्षेत्र-(काठियावाड)-के विरावल नामक स्थानमें स्थित हैं। यहाँके ज्योतिर्लिंगके आविर्भावके विषयमें पुराणोंमें एक रोचक कथा प्राप्त होती है। शिवपुराणके अनुसार

दक्ष प्रजापतिकी सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमा (सोम)-के साथ हुआ था, इनमेंसे चन्द्रमा रोहिणीसे

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dhafma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह संख्या २] प्रजापितकी अन्य कन्याओंको बहुत कष्ट रहता था। ऐतिहासिक विवरणके अनुसार सोमनाथका सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिर काठियावाड़के प्रभासपट्टन नामक समुद्रतटीय उन्होंने अपनी यह व्यथा-कथा अपने पिताको सुनायी। दक्षप्रजापितने इसके लिये चन्द्रदेवको बहुत प्रकारसे स्थलपर गुजरातके चालुक्योंद्वारा निर्मित कराया गया था। इस मन्दिरमें अपार धन-सम्पत्ति थी। दस सहस्र समझाया, किंतु रोहिणीके वशीभूत उनके हृदयपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी अन्य कन्याओंके साथ ग्रामोंकी आय इस मन्दिरको प्राप्त होती थी। मन्दिरके विषमताका व्यवहार देखकर कुपित हो दक्षने चन्द्रमाको उपास्य देव (भगवान् सोमनाथ)-की पूजाके लिये उत्तर क्षय-रोगसे ग्रस्त हो जानेका शाप दे दिया। इस शापके भारतसे प्रतिदिन गंगाजल वहाँ ले जाया जाता था। इस मन्दिरमें दैनिक पूजन-कृत्यके सम्पादनके लिये एक कारण चन्द्रदेव तत्काल क्षयग्रस्त हो गये। उनके सहस्र ब्राह्मण पुजारी नियुक्त थे, साथ ही ३५० गायकों क्षयग्रस्त हो जानेसे सुधा-किरणोंके अभावमें सारा संसार एवं नर्तिकयोंकी भी सेवा मन्दिरको समर्पित थी। निष्प्राण-सा हो गया। क्षयग्रस्त होनेसे दुखी चन्द्रमाने ब्रह्माजीके कहनेपर भगवान् आशुतोषकी आराधना की। इस प्रभृत धन-वैभवसम्पन्न मन्दिरपर सन् १०२४ चन्द्रमाने छः महीनेतक स्थिर चित्तसे खड़े रहकर ई० में गजनीके सुलतान महमूदने आक्रमणकर इसे अपने अधिकारमें कर लिया। मन्दिरकी अपार सम्पत्ति तो उसने भगवान् शिवके मृत्युंजय स्वरूपका ध्यान करते हुए दस करोड़ मृत्युंजय मन्त्रका जप किया। तब भगवान्ने प्रसन्न लूट ही ली, विशाल शिवलिंगके टुकड़े-टुकड़े भी कर होकर दर्शन दिया और चन्द्रमाको अमरत्व प्रदान करते दिये। हुए मास-मासमें पूर्ण एवं क्षीण होनेका वर दिया। इस गुजरातके राजा भीमदेव प्रथमने पुनः पुराने सोमनाथ प्रकार भगवान् आशुतोष सदाशिवकी कृपासे चन्द्रमा मन्दिरके स्थानपर जो ईंटों और लकड़ीसे बना था, रोगमुक्त हो गये और दक्षके वचनकी भी रक्षा हो गयी। पत्थरका नया मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया, बादमें सिद्धराज जयसिंह, विजयेश्वर कुमार पाल तथा सौराष्ट्रके तदनन्तर चन्द्रमा तथा अन्य देवताओंके द्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर उन्हींके नामसे ज्योतिर्लिंगके खंगारराजने भी इसका जीर्णोद्धार कराकर इसे पुनः रूपमें वहाँ स्थित हो गये और सोमनाथके नामसे तीनों समृद्ध किया, परंतु मुसलमान शासकों अलाउद्दीन खिलजी, लोकोंमें विख्यात हुए। सोमनाथका पूजन करनेसे वे मुजफ्फरशाह और अहमदशाहकी धर्मान्धताका यह उपासकके क्षय तथा कुष्ठ आदि रोगोंका नाश कर देते बराबर शिकार होकर नष्ट-भ्रष्ट होता रहा। देशके हैं। वहीं सम्पूर्ण देवताओंने सोमकुण्ड (चन्द्रकुण्ड)-की स्वतन्त्र होनेपर सोमनाथके मूल मन्दिरके स्थानपर ही भी स्थापना की है, जिसमें शिव और ब्रह्माका सदा एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया गया, जिसका तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्रप्रसादने उद्घाटन किया। निवास माना जाता है। यह कुण्ड इस भूतलपर पापनाशन इस मन्दिरके पास ही इन्दौरकी महारानी अहल्याबाई तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है। जो मनुष्य इसमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। क्षय आदि जो होल्करने भी भगवान् सोमनाथका एक मन्दिर बनवाया असाध्य रोग होते हैं, वे सब उस कुण्डमें छ: मासतक है। इसी पवित्र प्रभास-क्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जिस फलके अपनी लीलाओंका संवरण किया था। भगवान् सोमनाथका ज्योतिर्लिंग गर्भगृहके नीचे एक गुफामें है, जिसमें उद्देश्यसे इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, उस फलको निरन्तर दीप जलता रहता है। [क्रमशः] सर्वथा प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है।

तीर्थयात्रा |कहानी---| (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') 'भगवन्! हमलोग आज कहाँ हैं?' एक काषाय-वस्त्रधारी चलते समय उसके दोनों पुत्र फूट-फूटकर रोये थे। दोनों तरुणने पूछा। यात्रियोंके इस दलमें संन्यासी कोई नहीं है; पुत्रवधुएँ घूँघटके भीतर हिचकियाँ ले रही थीं और उसका किंतु तीर्थयात्री होनेके कारण सभी काषाय-वस्त्र पहनते हैं। नन्हा पौत्र उसकी गोदसे उतरना ही नहीं चाहता था। यह घोर सबके मस्तक तथा दाढ़ी-मूँछके बाल बढ़ गये हैं,नख लंबे कानन—आज दिनमें ही चीतेकी गन्ध मिली है। रीछ दीखा हो गये हैं और वस्त्र मिलन हो रहे हैं, घरसे सब सम्पूर्ण केश है समीपके बेरके वृक्षपर बेर खाता और वाराहयूथ आगे-मुण्डित कराके चले थे; किंतु केश तो घासकी भाँति बढ़ते हैं आगे जा रहा है, यह बात तो रौंदे तृणों तथा तत्काल खोदी और ये ठहरे तीर्थयात्री, घर छोड़े इन्हें कई मास हो गये। भूमिसे सहज अनुमान की जा सकती है। इस वनमें रात्रि-अभी तो कई मास और लगने हैं इन्हें। तीर्थयात्रामें न क्षौर विश्राम—परंतु दूसरा कोई मार्ग तो दीखता नहीं। कराया जा सकता, न वस्त्र धुलवाये जा सकते और न तैल-'भद्र! भयका तो कोई कारण नहीं है। जिसने आह्वान मर्दन ही उपयुक्त है। किया है, वही अपने श्रीचरणोंके समीप पहुँचायेगा। वह 'भगवान्के मार्गमें भद्र! तुम आकुल क्यों होते हो? ग्राममें है और वनमें नहीं, ऐसा क्यों सोचते हो?' आगे हम मार्ग भूल गये हैं; किंतु ऐसा कौन-सा मार्ग है जिसमें वह चलनेवाले वृद्धकी श्रद्धा अंडिंग थी। उनकी श्रद्धाका ही नहीं है। वह जानता है कि हम उसकी ओर चले हैं।' बड़ा बल है, जो यह दल अबतक चला आ रहा है। स्थिर स्वर, बड़ी भव्य शान्ति थी त्रिपुण्डू-मण्डित भव्य 'जो कुछ था डाकुओंने ले लिया और मार पड़ी वह भालपर। हाथमें लाठी और कमण्डल्, कन्धेपर झोला और ऊपरसे। अब तो मृत्यु ही रही है, उसे आना है तो वह भी आ कटिके वस्त्रोंको समेटकर ऊपर बँधा एक वस्त्रखण्ड। सबसे जाय!' एक यात्री कुछ स्थूल शरीर है। स्वभावत: चलनेमें वृद्ध होनपर भी यात्रामें वे सबसे आगे चल रहे थे। उसे अधिक श्रम होता है। वह झुँझला उठा है। इधर उसके 'बाबा! आज हम कहाँ ठहरेंगे?' कृषक-जैसे दीखते स्वभावमें चिड्चिड़ापन भी अधिक आ गया है। एक व्यक्तिने पूछा, जो सम्भवतः थक चुका था। उसकी 'डाकू आये, यह तो हमारा ही पाप था' आगे आधी पकी मूँछोंपर धूलि जम रही है और भौंहोंके केश चलनेवाले वृद्धने तनिक रुककर पीछे देखा—'तीर्थयात्री ललाटके बहे पसीने और धूलिसे मिलकर की चड़में लथपथ-स्वर्णमुद्रा लेकर चलेगा तो दस्यु आयेंगे ही। हमारे पास से लगते हैं, इसकी ओर उसका ध्यान नहीं था। उसके कलके लिये भी संग्रह रहे तो हम विश्वम्भरपर विश्वास

बिवाइयोंसे चिथड़े हो रहे थे और उन बिवाइयोंमेंसे निकली रक्तको बुँदे धूलिमें सनकर जम गयी थीं। 'जहाँ कहीं जल मिलेगा, वहीं हम आज रात्रि-विश्राम करेंगे। तिनक पैर दबाये आओ भाई!' आगे चलनेवाले वृद्धने केवल क्षणभरको गति मन्द की और फिर वे शीघ्रतासे चल पड़े। उनकी त्वरा समझमें आने योग्य है। भगवान् भास्कर पश्चिम क्षितिजपर पहुँच चुके हैं। घंटेभरमें वनमें अँधेरा हो जायगा और तब आगे बढ़ना शक्य नहीं रहेगा। 'रात्रिके

आगमनके पूर्व एक जलस्रोत मिल जाय या सरोवर''''''

वृद्धके चरण बढते जा रहे थे।

श्वासकी गति बढी हुई थी। दूसरों-की भाँति उसके पैर भी

' भैया ! भगवान् मल्लिकार्जुन मृत्युंजय हैं । उनके चरणका दर्शन करने जो चला है उसकी आयु पूरी हो जाय मध्यमें, तो भी मृत्युको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।' वृद्ध कुछ पद लौट आये और स्नेहपूर्वक उन्होंने उस पुरुषके कन्धेपर हाथ रख दिया— 'तीर्थयात्राका अर्थ कहीं जाकर जलमें डुबकी लगा लेना और

किसी प्रतिमामात्रके दर्शन कर लेना नहीं है। यात्राका अर्थ है

कहाँ करते हैं। संग्रह न हो तो छीनने कोई क्यों आये?'

उसे छीनकर पेट भरनेवाले प्राणी भी आ ही सकते हैं!'

'महाराज! वैसे तो यह शरीर भी संग्रह है और वनमें

[भाग ९१

तितिक्षा—कष्ट-सहिष्णुता, त्याग, भगवत्स्मरण और एकमात्र 'हम इस वनमें ही रात्रि व्यतीत करेंगे?' वृद्धके पीछे प्रभुका आश्रय। जो प्रभु श्रीशैलपर विराजमान हैं, वे ही प्रत्येक प्राणीमें, प्रत्येक वन्य पशुमें हैं। हमपर आपत्ति आती है तब, चलनेवाले तरुणने चारों ओर देखा। उसे स्मरण आया-

स्थल पुरुषने व्यंग्य किया।

त्मारे सुख-सुविधाकी व्यवस्था करते हैं अथवा संग्रह करने लगते हैं। यदि हम प्रमत्न न हों तो प्रलयंकरके आश्रितोंको ओर रंग, शोक आदि नेत्र उठाकर देख नहीं सकते। वात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं। वात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं। वात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं। उत्तरी भी मनुष्यने नहीं देखा था। फततः सुख आज-जैसी भोखा-धड़ी एवं छल-प्रपंचसे भी अपिर्यात वात के शताब्दी पहले छल-प्रपंचसे भी अपिर्यात वात के शताबें रात स्वार था। मम्प्रप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण करने तो थी सबसे विवत ले लेनी थी। तीर्थयात्राको। उन्होंने अपनी लगभग छेढ़ वर्ष लगग यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमं। सभी सगे-सम्बन्धियोंसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विवत ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था पत्त लोटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे व्यवस्था कर रहने थी। विकत के स्वर्ध वात्र मोर्म हिस वरस्य तथा वन्य मांमवे लिये थे और उनसे भी लिए से प्राप्त करावा। मार्गमें नव वे मार्ग से कम भयप्रद प्रतीत होने लगा था। प्रस्क पुले कि कोई कव अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री अपने वस्त्र गैरिस वरस्य पहुँचें।'अग्रणी वृद्ध का विवत्र व्यवस्थि हो लोग प्रति वर्ष हो को भीर जलपात्र, के धेपर होले, पुण्डन करावा हो तो कोन कह सकता है कि कोई कव अस्व प्रवाद हो जो को के कह सकता है कि कोई कव अस्व यात्र मुंग पुले के लोग हो ते हैं के हम श्रीशैल जाना हो तो कौन कह सकता है विक कोई कव अस्व यात्र में प्रति हो और जलपात्र के अप्ता वन्य यात्र के स्व हो पार था कि स्व हो पार था विक हो से यात्र प्रति हो और उत्साह के वात्र भी पार के विव हो पार था कि स्व हो पार था विक हो से वात्र हो से साम्प्रक के अस्व वन्य व्यवस्थ पहुँचें। अस्व पार हो से साम्प्रक हो से विव हो से साम्प्रक हो के साम्प्रक हो से साम्प्रक हो स	संख्या २] तीर्थ	यात्रा ३३
कोई सुख-सुविधाकी व्यवस्था करते हैं अथवा संग्रह करते लगते हैं। यदि हम प्रमत्न न हों तो प्रलयंकर आश्रितोंकी ओर रोग, शोक आदि नेत्र उठाकर देख नहीं सकते। वात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं वात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं विद्या था जिस के से प्रोत्ते के साथ जो मार्ग-दर्शक था, मुख्य आज-जैसी भोखा-धड़ी एवं छल-प्रपंचसे भी अपरिचत था और आजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सुदृह था और उसका मानस श्रद्धा-पिपृत था। मध्यप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण-कन्म मनमें लालसा जाग्रत हुई तीथंयात्राकी। उन्होंने अपनी कर में लोगोंने खान सम्यादेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण-कन्म ने लाभग छेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमं। सभी सगे-सम्बन्धियोंसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। विधियात्राका अर्थ था घर ने लीटनेकी प्रस्तुत होकर जाना। मार्गों वन थे—लंबे- व्यवस्थ हो जायगा। तीथंयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रात्ते हो के सम्याद्ध के अस्त वन्ध वन्ध वात्रा हो तो कौन कह सकता है कि कोई क्य अस्त स्था वन्ध मान्य हुआ। अत्तमें ग्राम-पिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने स्मरतक, नेगे पर यात्रियोंको तल वन्ध पड़ा। चहिंतक ग्राम-मं मार्गात हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनको आतिष्य वन्ध वात्रा हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनको आतिष्य विका स्था हुआ, उनकी भूजा हुई सोल्लास उनको आतिष्य वृद्धको अग्रणी वृद्धने अगर मार्ग कुज होते वे स्था नहीं देश हुम भी से एक देन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। विना पूछे तहातड़ इंडे पड़ गये दो-दो चार निक्स भी मुत्रों डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। अत्रों कि अपने वर्च मार्ग कि अपने साथियों के पुकरा। साथमें एक कुछ स्था विद्या विवत के साथ कि अपने साथ के साथ के साथ के साथ के साथ विद्या विवत के साथ के सा	<u>*************************************</u>	*************************
'आओ भाई! अब हमारी यात्रा निरुपद हों गयी। अमंगल सेंग, शोक आदि नेत्र उठाकर देख नहीं सकते।' बात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं। रिल ओर मोटरोंका स्वण भी मनुष्यने नहीं देखा था। फलतः मनुष्य आज-जैसी थोखा-धड़ी एवं छल-प्रणंचसे भी अपरिचंच निरुपत था। उसका शरीर रवस्थ था, सृद्ह था और उसका मानस श्रद्धा-पिर्मूल था। मध्यप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण-के मनमें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपना के मनमें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपना के मनमें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्रकी। उन्होंने अपना के मनमें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्रकी। उन्होंने अपना के मनमें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्रकी। उन्होंने अपने स्वत्य यो भी सक्ते विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्रका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्रका अर्थ था घर नतींटनेको प्रसुत होकर जाना। मार्मी वन थे—लंबे-वौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिस्स दस्य तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अरख्य। वनोंमें हिस्स दस्य तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अरख्य हो जायगा। तीर्थयात्र तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्राप्त के मनके सकता छो। कि नक सकता हो तो को के कह सकता है कि कोई का अरख्य स्वय मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक कुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने प्रसुत हो का पर है जोर कहा था। उसकी और उनसे भी हिस्स दस्य तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक कुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाटियों और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मानवी यात्रा प्रसुत का ना था। विद्या जोर वात्र है को स्वय पहुँचोंगे। अग्रणी वृद्धको अर्थेरा न उन्हें यही पता था कि स्राप्त हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनकी आताय चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घर लिया। बिना चुके का प्रमुक्क चुनोंती हुक हो गया। वात्र वे अर्थेरा वन के सम्पुक्क चुनों पात्र वे अर्थेरा वन के सम्पुक्क चुनों वात्र के सम्पुक्क चुनों पात्र वे अर्थेरा वात्र हो पहले के सार पहले हो गया था। विद्या के सार पहले हुक हो गया। वो अर्थेरा वात्र हो पहले के सार हो लिया हो कि को हिस्स हो लिया हो कि को हिस्स हो लिया हो हो ने हुक हो गया। वात्र हो गया वात्र हो ने हुक हो गया। वात्र हो ने हुक हो नही पहले हुक हो नही पात्र हो नित्र हो ने हुक हो नही पहले हुक हो नही पहले हुक हो कि सार	जब हम प्रमाद करते हैं, जब हम यात्राके नियम भंग करके	जोड़कर प्रणाम किया—'तुम हमारे प्रभुके भेजे आये हो।
बात कई शताब्दी पहलेकी है । देशमें सड़कें नहीं थां । क्लात कई शताब्दी पहलेकी है । देशमें सड़कें नहीं थां । कलात कई शताब्दी पहलेकी है । देशमें सड़कें नहीं थां । उन्हों ने आश्वासन दिया । इस भ्रमां चेक व्राव्ध था, मृत्य आज- जैसी धोखा- धड़ी एवं छल- प्रपंचसे भी अपरिवित्त था , वह भाग चुका था । दर्य, स्वर्णमृद्राएँ लेकर ऐसे अदृश्य हुए, था और अतक गोगोंसे भी । उसका शरीर स्वस्थ था, मृद्ध था और अतक गोगोंसे भी । उसका शरीर स्वस्थ था, मृद्ध था और अतक गोगोंसे भी । उसका शरीर स्वस्थ था, मृद्ध वह भाग चुका था । वह ना था । चोर वनमें कोई क्या अनुमानक कर । वे भटक गये और भटकते ही चले गये । वनके कन्दों के भनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी । उन्होंने अपना हुं वह लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होकर जाना । मार्गमें वन थे— लंबे- चौंड़े व्यापक अरण्य । वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे । जब दीर्घकालतक अनिश्यत परिकृत हो जा रहे हैं ?' तरण भी अस्वस्थ हो जायगा । तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही सुहत्ते निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मृण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्रामभितातक जाकर जयजयव्यकार करते हुए उन्हें विदा दी । हाथोंमें लाटियों और जलपात्र, केपेपर झोले, मृण्डन कराया और देवने लगा कि 'कोई वैठनेयोग्य वृक्षको जरू भी मिल तोरा हो, बड़ा उत्साह रहा सबमें । प्रत्येक ग्रामचे उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आविष्य अतेर एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। विना पूछे तड़ा कुं डे पहा चा वीन वित्र स्वाग वित्र सुण सुण सुण सुण हुई सोल्लास उनका आविष्य अतेर एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। विना चुक अपने साथियोंको पूकारा । साथमें एक कुछ हो गया था। 'भगान हुओं पहा कोई आ रहा था उनके सामुखकी दिशारे विवर हो गया था। 'भगान हुओं अर रहा था। वह खड़ा हो गया था। 'भगान हुओं अर रहा था वह खड़ा हो गया था। 'भगान हुओं अर रहा था। वह खड़ा हो गया था। 'भगान हुओं अर रहा था वह खड़ा हो गया था। 'भगान हुओं और प्रत्य वित्र हो गया था। 'भगान कुओं अर रहा वह खा हो यो यो अर्थ सुक को केपा वित्र सुक को किए सुक वित्र सुक को निर्न सुक को किए सुक वित्र सु	कोई सुख-सुविधाकी व्यवस्था करते हैं अथवा संग्रह करने	यह पाप था हमारे साथ, जिससे तुमने हमें मुक्त कर दिया।'
बात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं। रेल ओर मोटरोंका स्वण भी मनुष्यने नहीं देखा था। फलतः मनुष्य आज-जैसी थेखा-धड़ी एवं छल-प्रपंचसे भी अपरिचित था और अजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सृदृह था और अजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सृदृह था और उसका मानस श्रद्धा-पिरृत था। मध्यप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण- के मनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी के मनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें। सभी सगे-सम्बन्धियोंसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लीटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्मों वन थे—लंबे- चौड़े व्यापक अरण्य। वनने में। वे स्वन्ते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चत भटकता हो तो कीन कह सकता है कि कोई क्वा अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। पुहुर्त निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मृण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लिटियाँ और जलपात्र, कंभेपर झोले, मृण्डित समस्तक, नंगे पर यात्रियोंको पकता हि को है क्वा समस्तक, नंगे पर यात्रियोंको उन्हों चे लिया। स्वत्त है। उन्हों परिक्रा हुआ, उनकी पूर्णों कु हे से लिया। समस्तक, नंगे पर यात्रियोंको पकता विद्वा साम्प्रचेत का स्वान्त हुआ, उनकी पूर्णों के से लिया। समस्तक, नंगे पर यात्रियोंको पकता विद्वा स्वान्त हुआ, उनकी भूजा हुई, सोल्लास उनको आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्र चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हों ये लिया। वनते भूज त्राक्त हुआ, उनकी भूजा हुई, सोल्लास उनको आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्र चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हों ये लिया। वनते भूज त्रहें यह साम्प्रचें को प्रकार गर्ने वे से लिया। वनते सुत्र सुप्त हो का स्वान्त हो ते से स्वान्त हो ते हो ये सुक्व सुत्र अपने साम्प्रचेत विद्व सुत्र सुप्त हो लिया वित्र सुत्र सुत	लगते हैं। यदि हम प्रमत्त न हों तो प्रलयंकरके आश्रितोंकी ओर	•
हस धमाचौकड़ीमें यात्रियोंके साथ जो मार्ग-दर्शक था, मनुष्य आज-जैसी धोखा-धड़ी एवं छल-प्रपंचसे भी अपर्रिचत था और आजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सृदृढ़ वध और उसका मानस श्रद्धा-पिरपूत था। मध्यप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण-के मनमें लालसा जाग्रत हुई तीथंयात्राको। उन्होंने अपनी हम्च्या करे। वे अटक केन्द्रों करें। अपनी हम्च्या कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीथंयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीथंयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीथंयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीथंयात्राका अर्थ था घर नतींटनेको प्रस्तुत होने में हिस्स दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कवा अनुसान आराप्त अर्था वा तो कौन कह सकता है कि कोई कवा अनुसान आराप्त प्रमान आराप्त कर लिये, मुण्डन कराया और हवन अराया। तीथंयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्राम्सभातिक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। मुल्ते तिश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, ब्रोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन सम्मुख है या पीटकी ओर। महत्त्रत निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गेरिक कर लिये हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गोनिक कर वा मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पत्रा था कि श्रीशेल जान विस्त्र हो जा राह है और वचा वा मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पत्रा था कि अरोश जानते हैं के हम भीशेल जान वहित हो जा राह है और वचा वा मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पत्रा था कि अरोश जानते हैं के हम भीशेल जान वहित हो जा राह है और वचा वा मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पत्रा था कि अरोश जानते हैं को राह हो गोर यात्र विस्त्र साथ जा कि का मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पत्र विस्तर हो जान वहित हो गोर विस्तर हो जान वहित हो गोर विस्तर हो जान हो जा राह हो गोर विस्तर हो जान विस्तर हो जान विस्तर हो जान हो जान विस्तर हो जान विस्तर हो जान विस्तर हो जान हो जा विस्तर हो जान हो जान हो जा विस्तर	रोग, शोक आदि नेत्र उठाकर देख नहीं सकते।'	बहुत कम उपद्रव करके विदा हो गया।' स्थूलकाय वृद्धको
मनुष्य आज- जैसी धोखा- धड़ी एवं छल- प्रपंचसे भी अपिरिचत था और आजक रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सृदृढ़ जैसे शशकक सिरसे सींग। यात्रियोंको अब अपने अनुमानक भाषारपर आगे बढ़ना था। घोर वनमें कोई क्या अनुमान करे। वे भटक गये और भटकते ही चले गये। वनके कन्दों तथा मनें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्राको। उन्होंने अपनी इच्छा व्यवत की और कई सहयोगी मिल गये। वनके कन्दों तथा मनें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्राको। उन्होंने अपनी इच्छा व्यवत की और कई सहयोगी मिल गये। वनके कन्दों तथा मनें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्राको। उन्होंने अपनी कर देनी थी। मलसे विदा ले लेनी थी। वार्यकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। मलसे विदा ले लेनी थी। वार्यकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। मलसे विदा ले लेनी थी। वार्यकी यूरी व्यवस्था कर स्वात्र हो कर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे—चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्नु भरे थे और उनसे भी हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भरकता था। मुहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिकमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने अपने सहले हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिकमा करके पूरे ग्रामके लोगोंन काकर ज्वज्जकार करते हुए उन्हें विद दा हुआ। महिलती रही, बढ़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य मुश्ले तहात हुआ। यात्रियोंको उकल पात्र के अपने साथ्यकों भुकारा। वनकी कराया वात्र सुकरा भी कि आगे भटकनेकी हो और ला पह खुड़ हो गया था। 'भरवान सहिलत हो जा रहे हैं और वहाँ प्रताप का अध्ये वात्र हो हो पुर पुर के विद तो। से क्राम पुर हुण ने साथ्यकी अध्ये वात्र हो हो ग्राम परिका वे के सम्युखकी हुआ। यात्र हुण पुर स्व वे नहीं। स्व पुर सुण वे हुण यात्र हिंस हुण अधिक बोलना नहीं पड़ा को हो गुण वे हुक हो गया था। वह खुड़ हो गया था। वह खुड़ हो गया वात्र हुण पुर सुण वे के सम्युखकी जा वात्र हुण पुर सुण वे के सम्युखकी व्याप विद्य बोल मुण पुर हुण पुर सुण वे के सम्युखकी व्याप विद्य हुण, विद्य हुण	बात कई शताब्दी पहलेकी है। देशमें सड़कें नहीं थीं।	उन्होंने आश्वासन दिया।
था और आजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सृदृह था और आजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सृदृह था और असका मानस श्रद्धा-पिपृत था। मध्यप्रदेशके एक छोटे-से प्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण- करे। वे भटक गये और भटकते ही चले गये। वनके कन्दों के मनमें लालसा जाग्रत हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी त्वाथा पत्ते और कई सहयोगी मिल गये। करे। वे भटक गये और भटकते ही चले गये। वनके कन्दों तथा पत्ते और कई सहयोगी मिल गये। विस्ता करे। वे भटक गये और सटकते ही चले गये। वनके कन्दों तथा पत्ते और सत्त्व एक दिन ऐसा आया, जब मध्याह्रोत्तर चलोग स्वध्यासे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था कर देनी और ता रहे हैं?' तरण भी करवन की अरेक्षा वन्य पशुओंद्वारा आखेट वोडे व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भेरे थे और उनसे भी हिंस्स दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चत भरता था। मुद्र्व निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर ता वा। मुद्र्व निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर ता था। मुद्र्व निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर ता वा। वाहते हैं इस जम्में पहुँ वेगे नहीं। 'स्थूलकाय व्यक्तिक लिये चला रही अर्थ के ता कर सम्मुखकी उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह अया। वनको यात्र मिलती रही, बड़ जा रही हैं के हम श्रीशैल विव हो गो तो से सम्योग विव सम	रेल ओर मोटरोंका स्वप्न भी मनुष्यने नहीं देखा था। फलतः	इस धमाचौकड़ीमें यात्रियोंके साथ जो मार्ग-दर्शक था,
था और उसका मानस श्रद्धा-पिरपूत था। मध्यप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण- के मनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की और कई सहयोगी मिल गये। लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें। सभी सगे-सम्बन्ध्ययोसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे- चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब अस्वस्थ हो जावगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। मुहुर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक हर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित सस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम- सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिष्य व्रक्ता नि और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। विना व्रक्ता; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्र अत्रा, किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको प्रकार। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्व यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्धाँ छिपी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्रार हो गर्यों।	मनुष्य आज-जैसी धोखा-धड़ी एवं छल-प्रपंचसे भी अपरिचित	वह भाग चुका था। दस्यु स्वर्णमुद्राएँ लेकर ऐसे अदृश्य हुए,
के मनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी हच्छा व्यक्त की और कई सहयोगी मिल गये। लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें। सभी सगे-सम्बन्ध्योसे मिल लोना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर वेलों थी। सबसे विदा ले लोनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होक-चें। वेलनेप थे। जब दीर्घकालतक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी अत्यन्त श्रान्त हो चुका था। उसकी श्रान्त इतनी अधिक घर न लौटनेको प्रस्तुत होक-चें। जब दीर्घकालतक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी अत्यन्त श्रान्त हो चुका था। उसकी श्रान्त इतनी अधिक घर न लौटनेको प्रस्तुत होक-चें वेल वेल थे। जब दीर्घकालतक अत्यन्य वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अत्यन्य करण्य। वानोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी अत्यन्त श्रान्त हो चुका था। उसकी श्रान्त हो लगा था। भगवान्त भारते हैं कि हम श्रीशैल जाना अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। मृहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक हो सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक हो सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक हो सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक हो सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। यात्रियोंने उपने हो सहस्त स्वान के अत्रमां पहुँचते गौर जाय। विका हा ह्योंमें लाठियों और जलपात्र, कंधेपर होले, मुण्डत मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-सिमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबसें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनको यात्र अत्रम हा सा चेलकी यात्र वेला हिंस हो हो यो दो चार-चार सवपा। विचा चित्र हो और एक दिन हो यो दा-चार सवपा। विचा विचा चित्र हो और जलपात्र हो यो हो यो चार-चार सवपा। विचा चित्र हो और एक दिन हो यो चार-चार सवपा। विचा चित्र हो अर लिये बोला—विचा मिलते हो यो चार-चार सवपा। विचा विचा चित्र हो यो चार-चार सवपा। विचा चित्र हो अर लिये वेला—विचा चित्र हो यो चार-चार सवपा। विचा चित्र हो यो चार-चार सवपा चित्र हो यो चार-चार सवपा चित्र हो यो चार-चार सवपा चि	था और आजके रोगोंसे भी। उसका शरीर स्वस्थ था, सृदृढ़	जैसे शशकके सिरसे सींग। यात्रियोंको अब अपने अनुमानके
क मनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी हुच्छा व्यक्त की और कई सहयोगी मिल गये। लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें। सभी सगे-सम्बन्ध्योंसे मिल लेना था। घरकी पूर्ती व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे—चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चत भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कव अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। मुहुर्त निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। यात्रयोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। यात्रयोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और वहां व्यवस्थ पहुँचें।' अग्रणी वृद्धके विराच पहुँचे। अगर गिर्क वाच पहुँचो निश्चत हुआ। यात्रयोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये हुआ। यात्रयोंने अपने वस्त्र गैरिक जाव या वस्त्र गैरिक कर लिये हुआ। यात्रयोंने उनके प्राप्त हुआ उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनको यात्रा चलनेपर उन्हें चर लिय। विचा पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार—चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकार। साथमें एक कुछ सुक विमेच वेतन विप चेतन	था और उसका मानस श्रद्धा–परिपूत था।	आधारपर आगे बढ़ना था। घोर वनमें कोई क्या अनुमान
हच्छा व्यक्त की और कई सहयोगी मिल गये। लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें। सभी सगे-सम्बन्धियोंसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे— चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्न जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्न दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कोन कह सकता है कि कोई कव अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। मुहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने चस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। सस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम- सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्रामके सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्रामके सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्रामके सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्रामके सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्रामके सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्रामके स्वात रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्वत्ववाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णपुहाएँ छिपी थीं। डाकुओंको मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं।	मध्यप्रदेशके एक छोटे-से ग्रामके एक वृद्ध ब्राह्मण-	करे। वे भटक गये और भटकते ही चले गये। वनके कन्दों
लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें। सभी सगे-सम्बन्धियोंसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे- चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। मृहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित ससतक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम- सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्र चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ हिणी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गर्यों।	के मनमें लालसा जाग्रत् हुई तीर्थयात्राकी। उन्होंने अपनी	तथा पत्तों और सरोवर या निर्झरके जलपर कई दिन काट
(हम श्रीशैलकी ही ओर जा रहे हैं?' तरुण भी कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबेच्योंड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था।	इच्छा व्यक्त की और कई सहयोगी मिल गये।	दिये उन्होंने और तब एक दिन ऐसा आया, जब मध्याह्नोत्तर
कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे—चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्न जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्न दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अिंग्सिचत भटकना हो तो कौन कह सकता है िक कोई कब अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। मृहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मृण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने प्राप्तमीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मृण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंको दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-सिमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्र चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार—चार सबपर। "आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने अपेश वन्य पशुओंहारा आखेट हो जाना उसे कम भयप्रद प्रतीत होने लगा था। "भगवाने ये श्रेशेल जाना उसे कम भयप्रद प्रतीत होने लगा था। "भगवाने वे मुंह्येंगे। अगरेंग वहाँ जेंगे से और वहाँ जाना उसे कम भयप्रद प्रतीत होने लगा था। "भगवाने वे सुनों जो जानते हैं कि हम श्रीशैल जाना चाहते हैं, इसिलये हम श्रीशैल ही जा रहे हैं और वहाँ जानते थे थे और न उन्हें यही पता था कि श्रीशैल उनके सम्मुख है या पीठकी ओर। "इस्त जनमें पहुँचने गरेंग थे और न उन्हें यही पता था कि श्रीशैल उनके सम्मुख है या पीठकी ओर। "इस जनमें पहुँचने नहीं।' स्थूलकाय व्यवितके लिये चलना अब अत्यन्त किंठन हो रहा था। वह खड़ा गया अगरे देखने लगा कि 'कोई बैठनेयोग्य वृक्षको जड़ भी मिल जाय तो उसीपर बैठ जाय।' "हम इसी जीवनमें पहुँचनेंग और…।' किंतु वृद्धको अगरेंग वुक्क सम्युखको उन्हें यही पता था। किंत नहीं।' स्थूलकाय व्यवितके लिये चलना अव अत्यन्त किंठन हो रहा था। वह खड़ा हो गया था। "इस उनमें पहुँचने अगरेंग वुक्क सम्युखको उन्हें यह पता वहा चुक्क सम्युखको उन्हें वहा जानते हो सुक्क सम्युखको उन्हें यह पता वहा चुक्क सम्युखको अत्याप वुक्क सम्युखको उन्हें यह पता वहा चुक्क सम्युखको अत्य पता विवाप वि	लगभग डेढ़ वर्ष लगा यात्राके लिये प्रस्तुत होनेमें।	चलनेपर उन्हें जल मिलना भी कठिन हो गया था।
थी कि आगे भटकनेकी अपेक्षा वन्य पशुओंद्वारा आखेट चौड़े व्यापक अरण्य। वनों में हिंस्न जन्तु भरे थे और उनसे भी हिंस्न रस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। मृहूर्त निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवाने हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगेंन ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित सस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-परिक्रम करके पूरे ग्रामके लोगेंन ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित सस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-पस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-पत्ति रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममं उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्र चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार—चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकार। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे।उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुत्राएँ भिगा विद्या नहीं को प्रार भी अधिक उनपर ही पड़ी। कि आगा। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्रार हो गयीं।	सभी सगे-सम्बन्धियोंसे मिल लेना था। घरकी पूरी व्यवस्था	'हम श्रीशैलकी ही ओर जा रहे हैं ?' तरुण भी
हों जाना उसे कम भयप्रद प्रतीत होने लगा था। हिंस्न दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही मृहूर्त निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्राममीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डत मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-पलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ हिणी थीं। डाकुओंको मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। कताने जे कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	कर देनी थी। सबसे विदा ले लेनी थी। तीर्थयात्राका अर्थ था	अत्यन्त श्रान्त हो चुका था। उसकी श्रान्ति इतनी अधिक
हिंस्न दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। वैसे न वे मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पता था कि मुहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने हाथोंमें लाटियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्र चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो- दो चार-चार सबपर। इथुलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गर्यो।	घर न लौटनेको प्रस्तुत होकर जाना। मार्गमें वन थे—लंबे-	थी कि आगे भटकनेकी अपेक्षा वन्य पशुओंद्वारा आखेट
जिनिश्चतं भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब चाहते हैं, इसलिये हम श्रीशैल ही जा रहे हैं और वहाँ अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही मश्चय पहुँचेंगे।' अग्रणी वृद्धका विश्वास अलौकिक था। वेसे न वे मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पता था कि मृहूर्त निश्चत हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार–चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे।उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे।उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ अनुम्हार्ण डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ा। करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	चौड़े व्यापक अरण्य। वनोंमें हिंस्र जन्तु भरे थे और उनसे भी	हो जाना उसे कम भयप्रद प्रतीत होने लगा था।
अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही यात्रा प्रारम्भ करता था। कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंन ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-सिमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। प्राप्ति विप्ति दिशासे अलौकिक था। वैसे न वे मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पता था कि सम्मुख है या पीठकी ओर। 'इस जन्ममें पहुँचते नहीं।' स्थूलकाय व्यक्तिके लिये चलना अब अत्यन्त कठिन हो रहा था। वह खड़ा हो गया और देखने लगा कि 'कोई बैठनेयोग्य वृक्षको जड़ भी मिल जाय तो उसीपर बैठ जाय।' 'हम इसी जीवनमें पहुँचंगे और…ा' किंतु वृद्धको अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आ रहा था उनके सम्मुखकी दिशासे के आहे आ रहा था उनके सम्मुखकी दिशासे के अत्यन जान्तके या।' 'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने जाय। 'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते हीं।' अग्रण विस्व कार नहीं।' स्थूलकाय व्यक्तिके लिये वेलना नहीं पड़ा। कोई आर रहा था उनके सम्मुखकी दिशासे के अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आर रहा था विश्व के अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आर रहा था विश्व के अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आर उत्साहके अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई विश्व के अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आर विश्व के अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई अधिक वेलना नहीं पड़ा। अधिक वेलना नहीं पड़ा। अधिक वेलना नहीं पड़ा।	हिंस्र दस्यु तथा वन्य मानव मिलते थे। जब दीर्घकालतक	'भगवान् आशुतोष जानते हैं कि हम श्रीशैल जाना
वसे न व मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पता था कि मुहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-पिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम- सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गर्यों।	अनिश्चित भटकना हो तो कौन कह सकता है कि कोई कब	चाहते हैं, इसलिये हम श्रीशैल ही जा रहे हैं और वहाँ
मुहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-सिमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा 'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरमे ही आगन्तुकने अरे आकृष्ट हो गया था। कि 'ओरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ स्थूलकाय श्रापत हो गयीं।	अस्वस्थ हो जायगा। तीर्थयात्री तो मृत्युको चुनौती देकर ही	निश्चय पहुँचेंगे।' अग्रणी वृद्धका विश्वास अलौकिक था।
कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने यामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम- 'हम इसी जीवनमें पहुँचेंगे और…।' किंतु वृद्धको अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आ रहा था उनके सम्मुखकी उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार–चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	यात्रा प्रारम्भ करता था।	वैसे न वे मार्ग जानते थे और न उन्हें यही पता था कि
हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने याप्तमितिक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। और देखने लगा कि 'कोई बैठनेयोग्य वृक्षकी जड़ भी हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-सिमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अत्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं।	मुहूर्त निश्चित हुआ। यात्रियोंने अपने वस्त्र गैरिक	श्रीशैल उनके सम्मुख है या पीठकी ओर।
ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी। हाथों में लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम- 'हम इसी जीवनमें पहुँचेंगे और।' किंतु वृद्धको अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आ रहा था उनके सम्मुखकी दिशासे। सबका ध्यान आगन्तुककी ओर आकृष्ट हो गया था। उनकी यात्रा हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पृछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार–चार सबपर। 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मल्लिकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अतन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं।	कर लिये, झोले सिलवा लिये, मुण्डन कराया और हवन	'इस जन्ममें पहुँचते नहीं।' स्थूलकाय व्यक्तिके लिये
हाथों में लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम- 'हम इसी जीवनमें पहुँचेंगे और '''।' किंतु वृद्धको अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आ रहा था उनके सम्मुखकी उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार–चार सबपर। 'आर आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं।	हुआ। अन्तमें ग्राम-परिक्रमा करके पूरे ग्रामके लोगोंने	· ·
भस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम— सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आ रहा था उनके सम्मुखकी उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य दिशासे। सबका ध्यान आगन्तुककी ओर आकृष्ट हो गया था। 'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार–चार सबपर। अौर आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ ही आपको शिखरकी ध्वाके दर्शन होंगे।' 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	ग्रामसीमातक जाकर जयजयकार करते हुए उन्हें विदा दी।	और देखने लगा कि 'कोई बैठनेयोग्य वृक्षकी जड़ भी
सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें अधिक बोलना नहीं पड़ा। कोई आ रहा था उनके सम्मुखकी उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य दिशासे। सबका ध्यान आगन्तुककी ओर आकृष्ट हो गया था। 'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो–दो चार–चार सबपर। और आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	हाथोंमें लाठियाँ और जलपात्र, कंधेपर झोले, मुण्डित	मिल जाय तो उसीपर बैठ जाय।'
उनका स्वागत हुआ, उनकी पूजा हुई, सोल्लास उनका आतिथ्य हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा 'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। 'और आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मिल्लिकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन छिपी थीं। डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	मस्तक, नंगे पैर यात्रियोंका दल चल पड़ा। जहाँतक ग्राम-	'हम इसी जीवनमें पहुँचेंगे औरःः।' किंतु वृद्धको
हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा 'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना यात्रियोंकी थकावट, व्याकुलता तथा उत्सुकता समझ ली पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। और आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ ही आपको शिखरकी ध्वजाके दर्शन होंगे।' 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन छिपी थीं। डाकुओंको मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	सीमा मिलती रही, बड़ा उत्साह रहा सबमें। प्रत्येक ग्राममें	
चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना यात्रियोंकी थकावट, व्याकुलता तथा उत्सुकता समझ ली पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। और आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ ही आपको शिखरकी ध्वजाके दर्शन होंगे।' 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन छिपी थीं। डाकुओंको मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके		
पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर। और आश्वस्त करनेके लिये बोला—'वनमें भटक जानेके 'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ ही आपको शिखरकी ध्वजाके दर्शन होंगे।' 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन छिपी थीं। डाकुओंको मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	हुआ; परंतु वन आना था और वह आया। वनकी यात्रा	'आप सब श्रीशैलपर ही हैं।' दूरसे ही आगन्तुकने
'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते, कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ ही आपको शिखरकी ध्वजाके दर्शन होंगे।' स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन छिपी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	चलती रही और एक दिन दस्युओंने उन्हें घेर लिया। बिना	यात्रियोंकी थकावट, व्याकुलता तथा उत्सुकता समझ ली
अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ ही आपको शिखरकी ध्वजाके दर्शन होंगे।' स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मल्लिकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन छिपी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	पूछे तड़ातड़ डंडे पड़ गये दो-दो चार-चार सबपर।	
स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ 'भगवान् मिल्लकार्जुनकी जय!' यात्रियोंमें नवीन छिपी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	'अरे! किसीके पास कुछ हो तो दे क्यों नहीं देते,	कारण आप विपरीत दिशासे आये हैं। कुछ दूर आगे बढ़ते
छिपी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी। उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	अग्रणी वृद्धने अपने साथियोंको पुकारा। साथमें एक कुछ	
अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं। बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके	स्थूलकाय श्यामवर्ण वैश्य यात्री थे। उनकी धोतीमें दो स्वर्णमुद्राएँ	
	छिपी थीं। डाकुओंकी मार भी अधिक उनपर ही पड़ी।	उत्साह आ गया। उन्हें यह पता नहीं लगा कि उनको मार्ग
	अन्तमें वे मुद्राएँ डाकुओंको प्राप्त हो गयीं।	बताने जो कृपा करके पधारे थे, वे थे कौन और उत्साहके
'धन्यवाद बन्धुओ!' वृद्ध ब्राह्मणने दस्युओंको हाथ इन क्षणोंमें सहसा किधर अदृश्य हो गये!	'धन्यवाद बन्धुओ!' वृद्ध ब्राह्मणने दस्युओंको हाथ	इन क्षणोंमें सहसा किधर अदृश्य हो गये!

चार पुरुषार्थ (डॉ० श्रीकृष्णजी द० देशमुख)

[अनुवाद — श्रीमिलिन्दजी काले]

यह विषय जिसे हमें समझना है, बहुत बड़े है। यहाँ अर्थ शब्दका मतलब है प्राप्तव्य, जो अर्जित

विस्तारवाला है। अभ्युदय और नि:श्रेयस भारतीय करने जैसा है और जिसे अर्जित करना चाहिये—उसे ही संस्कृतिके दो प्रमुख अंग हैं। अभ्युदयमें प्रपंचके यहाँ अर्थ कहा गया है। वहीं मनुष्य जन्मका वास्तविक

व्यावहारिक सुखोंका, वैभवका विचार है और नि:श्रेयसमें ध्येय है। इस प्रकार चार पुरुषार्थ हैं-धर्म, अर्थ, काम

पारमार्थिक सुख और वैभवका दर्शन होता है। ये दोनों

सुख और वैभव साथ-साथ प्राप्त हों, ऐसी आशा-

आकांक्षा पुरातन समयसे भारतीय जीवनपद्धतिमें की गयी

है। कठोपनिषद्में अभ्युदयको प्रेय और नि:श्रेयसको श्रेय

कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम भारतीयोंका जीवन इन दोनों रंगोंसे भरा हो—ऐसी व्यवस्था, योजना

स्पष्टरूपसे नजर आती है। इसी योजना या व्यवस्थाके अन्तर्गत चारों पुरुषार्थींकी रचनाको समझना चाहिये।

ये चार पुरुषार्थ हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमेंसे धर्म और मोक्षका सम्बन्ध नि:श्रेयससे है और अर्थ एवं कामका सम्बन्ध अभ्युदयके साथ है। जो अर्थ पुरुषको

प्राप्त करना है, उसे पुरुषार्थ कहते हैं। यहाँ पुरुष शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंके लिये है। यह बात पुरुष शब्दकी उत्पत्तिका विचार किये बिना समझमें नहीं आयेगी।

'पुरि शयनात् पुरुषः।' पुर अर्थात् शहर और शहरमें रहनेवाला हुआ पुरुष। यह नौ द्वारोंवाला मानव-शरीर ही पुर माना गया है, जिसमें रहनेवाले जीवात्माको 'पुरुष'

नाम दिया गया है। अत: स्त्री हो या पुरुष दोनोंमें जीवात्मा या पुरुष रहता है। ऐसा कोई भेद नहीं है कि पुरुषके शरीरमें रहनेवालेको आत्मा और स्त्रीके शरीरमें रहनेवालेको

आत्मी कहेंगे। यदि शब्द और उसके पीछे रहनेवाली संकल्पना

ठीकसे समझ लें तो वे शब्द भारी-भरकम नहीं लगते और

इसलिये फिर उनका डर भी नहीं लगता। अब अर्थ शब्दको भी समझ लेते हैं। अर्थ शब्दके एक 'पैसा' और दूसरा

'मतलब' ऐसे दो अर्थ हैं।'आपकी बातका क्या अर्थ है ?' इस प्रश्नवाचक वाक्यमें तीसरा अर्थ नजर आता है। 'आपकी बातके पीछे आपकी क्या भूमिका है'ऐसा ध्वन्यर्थ

और मोक्ष। यह शब्दक्रम-रचना बड़ी मार्मिक या मर्मस्पर्शी है। इसे देखते ही यह ध्यानमें आयेगा कि अर्थ और काम

धर्म और मोक्षके बीच घिरे हुए हैं। यह क्रम निश्चित

रूपसे हमें कुछ सूचित करता है कि अर्थ धर्मकी मर्यादामें होना चाहिये और धर्मकी मर्यादामें काम मोक्षके आडे नहीं आता। ईमानदारीसे, लगनसे अभ्यास करनेवाले

संवेदनशील साधकको ही यह महसूस होगा। हम सभी संवेदनशील तो जरूर हैं, लेकिन उसका उपयोग मान, अपमान, यश, अपयश-जैसी बातोंमें ही करते हैं। चार

पुरुषार्थींकी यह रचना आजकल भरभराकर गिर गयी है। इनमेंसे अर्थ और कामकी गुण्डागर्दी इतनी बढ़ गयी है कि अर्थने धर्मको और कामने मोक्षको हमारे जीवनकी सीमासे बाहर कर दिया है. जीवनसे दरबंदर कर दिया है। उनका अगर फिरसे हम पुनर्निर्माण कर पायें तो यह एक बहुत

बडा काम होगा। आइये, अब हम इन चारों संकल्पनाओंके स्वरूपको समझ लें।

हमें जो अर्थ ज्ञात है, उससे धर्म शब्दका मूल अर्थ

धर्म

बहुत अलग है। 'धर्म' शब्दके उच्चारणके साथ ही

िभाग ९१

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई आदि सम्प्रदायोंकी याद हमें आती है। भारतमें धर्म नामक संकल्पनाका जिस

समय उदय हुआ, उस समय ये सम्प्रदाय मूलतः अस्तित्वमें ही न होनेके कारण धर्म शब्दपर हिन्दुत्व

सम्प्रदायको अकारण ही थोप दिया गया है। यह जुड़ा हुआ अर्थ यद्यपि अभ्यागत है, फिर भी परिस्थितियाँ

ऐसी हो गयी हैं कि उसे स्वीकार करनेके अलावा कोई

इस प्रश्नसे निकलता है, परंतु यहाँ (इस आलेखमें) अर्थ चारा नहीं है। यदि हम उसे स्वीकार नहीं करते तो रास्तिपंजिपपंजिपप्रियं अपिता के अस्ति के अस्ति

संख्या २] चार पु	रुषार्थ ३५
\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$	*********************************
किसी वस्तुके अपरिवर्तनीय गुणको उसका धर्म कहते	यही इस शरीरका उद्देश्य है और वही उसका धर्म है। संत
हैं। उदाहरणके तौरपर बर्फको लें। ठण्डा होना बर्फका	तुकारामने मनुष्यके शरीरको प्रकाशका मार्ग कहा है। बाकी
धर्म है। बर्फ ठण्डकके बिना रह नहीं सकती। अब इस	सारे शरीर अँधेरेकी ओर ले जानेवाले मार्ग हैं। इस धर्मको
उदाहरणसे मनुष्यका धर्म कौन-सा है—यह समझना सम्भव	साध्य करनेके लिये प्रारम्भिक तैयारीके रूपमें मनुष्यको
होगा। जिस बातमें मनुष्यका धर्म समाया है, वही बात अगर	आचरणके जो नियम बनाकर दिये हैं, उन्हें 'धर्मशास्त्र'
वह छोड़ दे तो उसकी मनुष्यता क्या बाकी बच पायेगी ?	कहा जा सकता है।
लकड़ीके डण्डेसे बाँधे हुए रंगीन झण्डे धर्म नहीं होते। इन	धर्म और धर्मशास्त्रका मुख्य अन्तर हमें समझ लेना
झण्डोंके बजाय डण्डोंपर ही आजकलके धर्म निर्भर रहते	चाहिये। धर्म साध्य होनेके लिये अन्त:करण शुद्ध और
हैं। टकराहट डण्डोंका धर्म होनेके कारण उन डण्डोंसे	शान्त होना आवश्यक है। पशुवत् जीवनके द्वारा यह बात
एक-दूसरेके झण्डोंको फाड़ना भी उसी क्रममें आता है।	असम्भव है। कम-से-कम पशु आहार, निद्रा और मैथुनके
रोटी, पैसा, दवाएँ और बन्दूक जब धर्म-प्रसारके साधन	भरोसे तो जी सकता है। मनुष्यको इनके अलावा भी और
बनते हैं, तब ऐसे धर्म मनुष्यके लिये कलंक बन जाते हैं।	बहुत कुछ आवश्यक होता है। ये आवश्यकताएँ यदि
प्रश्न उठता है कि मनुष्यकी मनुष्यता सिद्ध	मर्यादाओंमें सीमित नहीं की गर्यी तो मनुष्य पशुसे भी
करनेवाला धर्म कौन-सा है? इस सन्दर्भमें ऐतरेय-	भयंकर हो जाता है। इन मर्यादाओंको धर्मशास्त्र कहते हैं।
उपनिषद्में एक बोधकथा है—	वेदोंका कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड धीरे-धीरे
ईश्वरने जब विश्वनिर्माणकी प्रक्रिया शुरू की, उस	छोड़ देनेकी प्रक्रिया सन्तोंने बड़ी सावधानीसे पूरी की है,
समय इन्द्रियोंके सूर्य आदि सूक्ष्म देवताओंका निर्माण किया,	परंतु ज्ञानकाण्डका पूर्णतया जतन किया है। वैदिककालमें
लेकिन उन्हें अपना कार्य करनेके लिये कोई स्थूल शरीर	अग्नि, इन्द्र, सोम, सूर्य आदिकी उपासनाएँ की जाती
नहीं दिया था। तब वे सभी देवता ईश्वरके पास गये और	थीं। उसके पश्चात् विष्णुसहस्रनाम और सगुणोपासनामें
उन्होंने स्थूल शरीरकी माँग की। उस समय ईश्वरने उन्हें	राम, कृष्ण, दत्तात्रेय, शिव आदिकी उपासनाएँ की जाने
एक गायका शरीर बनाकर दिखाया। उन देवताओंने उस	लगीं। उसके भी आगे नामकी उपासना सामने आयी।
गायके शरीरमें प्रवेशकर उसकी जाँच की। सूर्यदेवताने	संत तुकाराम कहते हैं—
गायकी आँखसे बाहर झाँककर देखा तो उसे चारा, गौशाला	वेद अनंत चि बोलला। अर्थ इतुकाची साधला॥
और बैल (आहार, निद्रा, मैथुन)-के सिवा कुछ भी नजर	विठोबासी शरण जावें। निजनिष्ठे नाम गावें॥
नहीं आया। वे देवता तुरंत गायके शरीरसे बाहर निकले	अर्थात् वेदोंमें बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन
और उन्होंने ईश्वरसे अपनी नापसन्दगी जाहिर कर दी।	उसका सार यही है कि ईश्वरकी शरणागतिमें जाना
फिर ईश्वरने उन्हें घोड़ेका शरीर दिखाया। उसकी आँखसे	चाहिये और ब्रह्मस्वरूपका नामस्मरण करना चाहिये।
भी घास, तबेला और घोड़ीके सिवा कुछ दिखायी नहीं	वेद साहित्य विपुल है। सर्वसामान्यद्वारा उसे समग्र
दिया। तब उन्होंने उस शरीरको भी अस्वीकार कर दिया।	रूपसे स्वीकार करनेकी सम्भावना आज नजर नहीं
उसके बाद ईश्वरने उनके सामने मनुष्यका शरीर प्रस्तुत	आती। उस वेद साहित्यमें और शास्त्रोंमें विविधता और
किया। उस देहमें प्रवेश करनेके बाद देवताओंको बहुत	मतमतान्तर भी बहुत है। केवल अनुभवी और जानकार
आनन्द हुआ और वे वहीं स्थिर हो गये। ईश्वरने देवताओंसे	लोगोंको ही उसके तात्पर्यके अनुसार उसकी तारतम्यता
पूछा कि उन्होंने उस शरीरको क्यों पसन्द किया? उस	समझमें आती है।
समय देवताओंने जो उत्तर दिया, उसका सम्बन्ध धर्मसे	परम्परासे चली आ रही धार्मिक विधियोंके उचित
है। उन्होंने कहा कि जिसने हमें निर्माण किया, उसका	या अनुचित होनेके विवादमें न पड़ते हुए सन्तोंने जो
सच्चा स्वरूप जाननेका सामर्थ्य केवल इस शरीरमें है।	विधि-निषेध हमें बतलाये हैं, उनका पालन करनेसे भी

भाग ९१ चित्तशुद्धि हो सकती है। संत ज्ञानेश्वर कहते हैं— शायद इसके लिये लोगोंको कोई दिक्कत नहीं होगी। विधिते पालित। निषेधातें गालीत। मज देऊनी धर्म शब्दका दूसरा अर्थ कर्तव्य है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं-जालीत कर्मफले॥ (ज्ञानेश्वरी १२।७७) स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। अर्थात् जो भी करनेके लिये कहा गया है, उसका धर्म्याद्धि युद्धाच्छेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥ पालन करो और जो करनेसे मना किया गया है, उससे (गीता २।३१) अर्थात् स्वधर्मका विचार करनेपर भी तुम्हारा इस बचके रहो। इस प्रकार जीवनयापन करते हुए जो भी कर्मोंके फल प्राप्त हों, उन्हें ईश्वरको समर्पितकर जीवनको तरह डाँवाडोल होना उचित नहीं है। क्षत्रियके लिये युद्धसे श्रेयस्कर और धर्मयुक्त ऐसा दूसरा कल्याणकारी निर्बीज कर दो अर्थात् पुनर्जन्मके बीज नष्ट कर दो। संत तुकारामने अपने अभंग (मराठी काव्यरचना)-कुछ भी नहीं है। क्षात्रवृत्तिके लिये जो कर्तव्य है, उसे ही यहाँ में जो विधि-निषेध बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं— तीन निषेध— 'धर्म' कहा है। इस प्रकारसे कितने ही धर्म कर्तव्यके १. परस्त्रीकी कामना न करें। रूपमें हम सबके लिये बतलाये गये हैं। उदाहरणके २. पराये धनकी कामना न करें। रूपमें पितृधर्मको लें। मुझे दो संतानें हैं। उनके लिये सारी ३. परनिन्दासे पूर्णतया बचें। जिम्मेदारियाँ धर्म-कर्तव्य करना आवश्यक है। उन्हें अगर मैं नहीं करता तो मैं अधर्मी कहलाऊँगा। उनके तीन विधि— शरीर और मनकी योग्य रीतिसे परवरिश की जा रही है १. संत-वचनोंपर विश्वास रखकर उनके अनुसार या नहीं, इसे देखना मेरा धर्म है। मुझे मेरे धर्मका पालन आचरण करें। २. जीवनकी प्रत्येक अवस्थामें नामस्मरण करें। करना होगा। पुत्रधर्म, पतिधर्म, समाजधर्म, व्यवसायधर्म, राष्ट्रधर्म इस तरह अनेक कर्तव्य मेरे लिये निश्चित किये ३. हमेशा सत्यकी राहपर चलें। संत पूछते हैं कि 'उपरोक्त विधि-निषेधोंका पालन गये हैं। उन्हें पूरा करनेसे कतराकर यदि मैं ईश्वरके करनेसे किसीका क्या बिगड़ेगा?' सम्मुख खड़ा हो जाऊँ तो क्या ईश्वर मेरी ओर देखेंगे?' ऐसे अनुशासित जीवनको धार्मिक जीवन कहते पुत्रधर्म एक धर्म ही है। माता-पिताकी शक्ति और हैं। धर्माचरणकी परम्परागत कल्पनामें बहिरंगका विचार सामर्थ्यके अनुसार देखभाल करना इस धर्मका व्यावहारिक अधिक है। टीका, माला, धोती, अँगरखा, टोपी, अँगोछा स्वरूप है। भक्त पुण्डलीककी कथा बतलाती है कि इस आदिका सम्बन्ध संस्कृतिके साथ अधिक है। विवाह, धर्मका पालन करनेके फलस्वरूप स्वयं भगवान् पाण्डुरंग यज्ञोपवीत आदि संस्कार संस्कृति और धर्म दोनोंसे प्रकट हुए थे। अपने पुत्रधर्मका पालन करनेके बजाय सम्बन्धित हैं। स्नान, सन्ध्या आदि कर्म यदि शास्त्रीय यदि मैं द्वारका, काशी, बदरीनाथके फेरे करता रहूँ तो पद्धतिसे कर पायें तो वह एक अच्छी बात होगी, लेकिन उसे सिर्फ चक्कर लगाना ही कहना पड़ेगा। उसे यदि ये कर्म भी किन्हीं कारणोंसे सम्भव नहीं हों तो तीर्थयात्राका स्वरूप नहीं मिल पायेगा। उसके लिये भी कलियुगके योग्य पर्याय संत तुकारामने ये सारे धर्म या कर्तव्य हमपर थोपे हुए नहीं हैं, बल्कि वे हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमें एक बतलाया है। वे कहते हैं-नामें स्नान-संध्या केले सुसूत्रता और सुसंबद्धताका निर्माणकर जनजीवनको क्रियाकर्म। निवारिला॥ सुखी, सम्पन्न और संतोषी बनानेके साधन हैं, लेकिन त्याचा भवश्रम अर्थात् स्नान, सन्ध्या इत्यादि कर्म और अनेक धार्मिक फिर वे बोझस्वरूप क्यों लगते हैं? इसका सिर्फ एक विधियोंकी क्रिया केवल नामस्मरणसे पूर्ण हो सकती है। यही कारण है कि उसके लिये जो मनका दृढ निश्चय

संख्या २] चार पु	

चाहिये और जो कुछ त्याग करना पड़ेगा, उसकी हमें	तार्किक दृष्टिसे अगर देखें तो इसका सीधा अर्थ
आदत नहीं रही। नयी और पुरानी पीढ़ीमें यही बड़ा फर्क	है कि जो ईश्वरको वास्तवमें प्रिय है, उसे मैं ईश्वरको
है। पुरानी पीढ़ी बहुत अधिक संयमी थी। उनके संयम	न देते हुए ही स्वयंको भक्त कहना पसन्द करता हूँ। ईश्वर
और दृढ़ निश्चयको कभी-कभी हठका स्वरूप मिल	निर्गुणसे सगुण रूप धारण करता है। वह मेरी और
जाता था, जिसका उनसे सम्बन्धित लोगोंको कष्ट भी	आपकी ओर देखकर नहीं करता; क्योंकि हमारी वैसी
होता था। फिर भी इस कारणसे संयम और दृढ़	योग्यता नहीं है। यह योग्यता क्यों और किस प्रकार नहीं
निश्चयकी आवश्यकता कम नहीं होती। 'तुम युद्ध करो'	है, इसका वर्णन भागवतकी एक कथामें मिलता है।
यह गीताका ध्रुवपद है। मोहवश अर्जुनका निश्चय	संक्षेपमें वह कथा इस प्रकार है—बालकृष्ण और अन्य
विचलित हो गया था, इसलिये भगवान्ने उसे युद्ध	गोपाल यमुनानदीके तटपर गेंदके साथ खेल रहे थे। जब
करनेका उपदेश किया। यह बात अगर ध्यानमें रख पायें	बालकृष्णने गेंद फेंकी तो वह यमुनामें जा गिरी। यमुनाके
तो धर्म और कर्तव्य दोनोंमें कितनी एकरूपता है—यह	जिस दहमें गेंद गिरी थी, उसमें कालिय नामका एक
बात सहज ही समझमें आयेगी। यही कर्तव्यके प्रति	भयानक नाग रहता था। जब जमीनपर गेंद कहीं नहीं
निष्ठा और सच्ची धर्मनिष्ठा जब हमें अपने बसकी बात	मिली तो फिर केवल बालकृष्णने यमुनामें छलाँग लगा
नहीं लगती, तब हम धर्मके बाह्य उपचारोंमें खोकर	दी। कितना ही समय बीत गया, परंतु बालकृष्ण बाहर
धार्मिकताका दम्भ भरते हैं और उसकी भ्रामक खुशी	नहीं आये। गोपाल राह तकते थक गये। फिर उन्हें लगने
मनाते हैं। इसे ही धर्मग्लानि कहते हैं।	लगा कि बालकृष्ण निश्चित ही डूब गया है। वे सारे
देवताओंकी रुचि या पसन्द हमने पहलेसे तय कर	रोते, चिल्लाते, काँपते गोकुल वापस गये और उन्होंने
रखी है। उससे हटकर अलग सोचनेकी हमारी तैयारी	सारी हकीकत सब लोगोंको सुनायी। सभी लोग अत्यन्त
ही नहीं है। गणेशजीको दूर्वा और मोदक प्रिय हैं,	दुखी हो गये। गोकुलमें कुहराम मच गया। छाती कूटकर
शंकरजीको बेलपत्र और सफेद फूल चाहिये। विष्णु	रोते हुए सारे गोकुलवासी यमुनाके दहके पास पहुँचे,
भगवान्को तुलसीकी माला पसन्द है। उनकी पसन्दके	लेकिन कालियसे भयभीत होकर किसीने भी यमुनाके
बारेमें हम पूरी उदारता बरतते हैं। जिस-जिस देवताको	दहमें गोता लगाकर बालकृष्णको ढूँढ़नेका प्रयास नहीं
जो भी पसन्द हो, वे चीजें उन्हें अर्पण करनेका हम	किया। श्रीकृष्ण सारे गोकुलवासियोंका वास्तविक भाव
हरसम्भव प्रयत्न करते हैं, लेकिन ईश्वरकी वास्तविक	समझ चुके थे। श्रीकृष्णने कहा कि उनका यह बर्ताव
पसन्द बहुत ही अलग है। भगवान् श्रीकृष्णको कौन-	ठीक ही है; क्योंकि आखिर वे सब मनुष्य हैं। तात्पर्य
सी वस्तु सबसे प्रिय है ? जिस बातके लिये ईश्वर अपने	यही है कि धर्मकी रक्षा करनेहेतु भगवान् श्रीकृष्ण अवतार
निर्गुण स्वरूपको छोड़कर सगुण रूप धारण करते हैं,	लेते हैं। उन्हें धर्मके बारेमें गहरी आस्था है। मुझे अगर
वही वस्तु उसे सबसे अधिक प्रिय है—	ईश्वर प्रिय है तो मुझे भी विवेकपूर्ण धर्मनिष्ठ जीवन
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।	व्यतीत करना चाहिये; क्योंकि ऐसे धार्मिक जीवनसे
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥	चित्तशुद्धि होती है। शुद्ध चित्तमें ही ईश्वरका सच्चा
(गीता ४।८)	स्वरूप पहचाननेका और उसके साथ एकरूप होनेका
यही ईश्वरके प्रिय विषय हैं, लेकिन हमारा विचार	सामर्थ्य होता है। इस धर्मशास्त्रका पालन किये बिना
कुछ इस तरहका होता है—	वास्तविक धर्मका लाभ नहीं होता। जबतक आत्मज्ञान
कुछ ३स तरहका हाता ह— १. मुझे ईश्वर प्रिय है।	हमारी सच्ची आवश्यकता नहीं बनता तबतक धर्म भी
२. नुज्ञ इरपर ।प्रय है। २. ईश्वरको धर्म प्रिय है।	हमारी सच्ची जरूरत होना कठिन है। [क्रमशः]
२. इश्वरका वम ।प्रय है। ३. लेकिन मैं धर्म निभा नहीं सकता।	
२. लाकिन म वस ाम्सा महा सकता।	[प्रेषिका—श्रीमती मुक्ता वाल्वेकर] ►⊶►

मनुष्य जन्मकी सार्थकता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) विधाताने मनुष्यको अन्य योनियोंके प्राणियोंसे भिन्न, वह पहलेसे ही है।

विशेष विभृतियाँ देकर उसकी रचना की है। यह हमारी मनुष्य जीवनका अपना महत्त्व है। इसे भूल जानेका

अपनी पसन्द है कि हम पश्-योनिकी भाँति खायें-पीयें, ही यह परिणाम होता है कि व्यक्ति अपना मुल्यांकन सुख-दु:ख भोगें, विवश होकर जियें और जन्म-मरणके सांसारिक उपलब्धियों, वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य एवं चक्रमें फँसे रहें अथवा विधाताद्वारा प्रदत्त विशेषताओंका परिस्थितिके आधारपर करने लगता है, जिससे वह इनकी

सद्पयोग करके चिन्मय रसरूप अविनाशी जीवन प्राप्त करके अपने मनुष्य जन्मको सोद्देश्य (Purposeful) बनायें।

इसके लिये फिर हमें अपनेको 'मानव' स्वीकार करना होगा।' वस्तुत: मानव किसी आकृतिविशेषका नाम नहीं है। जो प्राणी अपनी निर्बलता एवं दोषोंको

देखने और उन्हें निवृत्त करनेमें तत्पर है, वही वास्तवमें मानव कहा जा सकता है। दूसरे शब्दोंमें 'जिस व्यक्तिमें मानवता है, वही

मानव है।' मानवताके तीन लक्षण हैं-(१) विचार, भाव और कर्मकी भिन्नता होते हुए भी स्नेहकी एकता (प्रेम)। (२) अभिमानरहित निर्दोषता (त्याग)।

(३) अधिकारका त्याग एवं दूसरोंके अधिकारकी रक्षा (सेवा)। व्यक्ति जिस समाजमें रहता है, उससे उसका

अविभाज्य सम्बन्ध है, जिसका क्रियात्मक रूप ही व्यक्तिद्वारा समाजकी सेवा है-अर्थात् व्यक्ति अपने तीन

विशिष्ट गुणोंद्वारा समाजकी सेवा कर सकता है-

(१) व्यक्तिकी निर्दोषतासे समाज निर्दोष होता है। (२) स्नेहकी एकतासे संघर्षका नाश होता है। (३) अपने अधिकारके त्याग और दूसरोंके

अधिकारकी रक्षासे सुन्दर समाजका निर्माण होता है। इन तीनोंद्वारा अपना भी कल्याण होता है।

मानवमें ही बीजरूपसे परम शान्ति, परम स्वाधीनता

और परम प्रियताकी माँग विद्यमान रहती है। कर्तव्य-परायणताके बिना शान्ति नहीं मिल सकती, अपनेमें ही

सार्थकता है।

भावात्मक सेवा करें।

मानव-जीवनकी सार्थकता क्या है? पूजनीया माँ

दासतामें आबद्ध हो जाता है, जिसका परिणाम दु:ख और

ही नहीं सकता। सभी टाटा, बिडला, अम्बानी हो नहीं

सकते; सभी राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मन्त्री, ऊँचे पदाधिकारी,

बड़े वैज्ञानिक, इन्जीनियर, डॉक्टर आदि बन नहीं

सकते। फिर तो अधिकांशको निराशा ही हाथ लगेगी

महत्त्व एवं उसकी सार्थकताके प्रति दुष्टिकोण सही करना है। वास्तवमे बडे-छोटेका कोई प्रश्न ही नहीं है,

हर व्यक्तिका जीवन सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण सिद्ध होगा।

यदि हम यह देखें कि क्या हमने अपनेको उपयोगी बना

इसे अपनाकर अपनेको उपयोगी बनानेमें हम

अपनेको उपयोगी बनाना ही मनुष्य-जीवनकी

पूर्णतया समर्थ और स्वाधीन हैं। सेवा सेवा ही होती है, कोई बडी या छोटी नहीं होती। निकटवर्ती जन समाजकी

यथाशक्ति क्रियात्मक सेवा करें और सद्भावद्वारा सभीकी

जबिक वास्तविकता यह नहीं है। केवल जीवनके

और अपना जीवन व्यर्थ जान पडेगा।

लिया है। हम उपयोगी कैसे होते हैं-

(३) प्रेमद्वारा प्रभुके लिये।

(१) सेवाद्वारा संसारके लिये,

(२) त्यागद्वारा अपने लिये और

ऐसे सोचके आधारपर सभीका जीवन सार्थक हो

दारिक्र्य होता है। दरिद्र वही है, जिसमें लोभ है।

अमृतानन्दमयीके शब्दोंमें 'हम शरीर स्वस्थ रखनेके

लिये व्यायाम करते हैं, लेकिन हृदयको व्यायाम देना सन्तुष्ट हुए, अचाह हुए बिना स्वाधीनता नहीं मिलेगी और प्रियताके लिये नित्य विद्यमान, परमतत्त्व, प्रेम- भूल जाते हैं। हृदयका व्यायाम दु:खित और पीड़ित Hindwism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH I QVE BY Avinash/Sha स्वरूप इंश्वरको अपना आत्माय मानमा हो होगा, जो लोगोको उनके स्तरस उठानेम, उनको सर्वाम है। संख्या २] चेतावनी 'हमारी आँखोंकी सुन्दरता काजलकी रेखामें नहीं सुख दे सकें तो यह एक बड़ी उपलब्धि है।' है, वरन् दूसरोंमें अच्छाई देखनेमें है और दु:खियोंके प्रति ऐसा ही उद्बोधन मेहेर बाबाका है-करुणामय दृष्टिमें है। कानोंकी सुन्दरता सोनेकी बालियोंमें 'Real Happiness lies in making others Happy' नहीं वरन् दूसरोंका कष्ट धैर्यपूर्वक सुननेमें है। हमारे (दूसरोंको प्रसन्तता प्रदान करनेमें ही अपनी सच्ची हाथोंकी सुन्दरता सोनेकी अँगूठी पहननेमें नहीं वरन् प्रसन्नता है।) सत्कर्म करनेमें है।' इस प्रकरणमें रवीन्द्रनाथ टैगोरकी एक छोटी 'हमें जीवनमें कृतज्ञताका भाव विकसित करना कविता बहुत ही अर्थपूर्ण है-चाहिये, हम संसारके समस्त प्राणियोंके ऋणी हैं, जिन्होंने 'Who is there to take up my duties?' हमारे विकास और पोषणमें किसी-न-किसी रूपमें asked the setting sun. सहायता दी है और हमें इस अवस्थातक पहुँचाया है।' The world remained dark and silent 'हमें अपने भाई-बहनोंकी दु:खभरी पुकार अनसुनी With joined palms said the earthen lamp, नहीं करनी चाहिये। जितना भी हो सके हमें उनका दु:ख 'I will do what I can, my master!' कम करनेका प्रयत्न करना चाहिये। करुणा करनेके लिये एक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारीने अपने कोई बड़े पद या बहुत धनकी आवश्यकता नहीं है। एक सहयोगियोंको सम्बोधित करते हुए टिप्पणी की-प्यारभरा शब्द, एक करुणाकारी दृष्टि, एक मुस्कान, कोई It is not given to many of us to be a sun. But छोटी-सी सहायता किसी गरीबके जीवनमें प्रकाश ला let us all, in our own modest way, at least try to सकती है और हमारे जीवनमें भी। हमारे जीवनका मूल्य be small earthen lamps and do the best we can. इसमें नहीं है कि हमने क्या पाया, बल्कि इसमें है कि जीवनकी सार्थकता यही तो है। हमने क्या दिया। यदि हम किसी जीवको थोड़ी देर भी [प्रस्तुति—साधन-सूत्रः श्रीहरिमोहनजी] चेतावनी (पुज्य स्वामी श्रीपथिकजी महाराज) ओ आने वालो इतना समझ लो, इस जग से तुमको जाना ही होगा। यदि रह गई हैं कुछ वासनाएँ, उनके लिये फिर आना ही होगा॥१॥ -\$-٠ जब तक किसी पर अधिकार रखकर, जितना अधिक सुख तुम भोगते हो। * * मानो न मानो जीवन में अपने, पुण्यों की पूँजी गँवाना ही होगा॥२॥ दानाधिकारी बनकर किसी से, श्रद्धा के बाहर यदि धन लिया है। * * तुम लेके देना भूलो भले ही, जो ऋण लिया वह चुकाना ही होगा॥३॥ जिससे किसी को दुःख हो रहा हो, ऐसा असत् कर्म होने न पाये। \$ सुख के लिये जो दुःख दे किसी को, उसको कभी दुःख उठाना ही होगा॥४॥ * तुम दूसरों को वह देते रहना, जो दूसरों से स्वयं चाहते हो। - **(** -जैसा भी दोगे वैसा प्रकृति से, कई गुणा तुमको पाना ही होगा॥५॥ * कुछ जानना है तो अपने को जानो, मानना है तो प्रभु को ही मानो। ٠ करना है तो सबकी सेवा करो तुम, जीवन किसी विधि बिताना ही होगा॥६॥ अहंता ममता जगत की. परमात्मा से ही प्रीति जोड़ो। देखो पथिक तुम जिनकी शरण हो, उन पर तो विश्वास लाना ही होगा॥७॥ [प्रेषक—श्रीकुँवरसिंहजी]

भगवान् शंकरकी गोभक्ति देवाधिदेव महादेव भगवान् शंकर 'पशुपति' कहे रसाभिज्ञैर्मधुरास्वाददायिनी। सर्वैर्ज्ञात्वा जाते हैं—'पशूनां पतिं पापनाशं परेशं।' उन्हें गौएँ त्वया विश्वमिदं सर्वं बलस्नेहसमन्वितम्॥ इतनी प्रिय हैं कि वे गायोंके ही साथ रहते हैं। उनका त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा। वाहन वृषभराज नन्दी है, उन्होंने धर्मस्वरूप वृषभको ही आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वाञ्छितसिद्धिदा॥ अपनी ध्वजामें भी स्थान दिया है, इसीलिये वे 'वृषभध्वज' त्वं धृतिस्त्वं तथा तुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा। कहलाते हैं। भगवान् शंकरको तपस्या करना अतिप्रिय ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धितः कीर्तिस्तथा मितः ॥ है और वे तपस्या भी गौओंके साथ रहकर ही करते हैं; कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी।

गावोऽधिकास्तपस्विभ्यो यस्मात् सर्वेभ्य एव च ॥ तस्मान्महेश्वरो देवस्तपस्ताभिः सहास्थितः। (महा० अनु० ६६।३७-३८) भगवान् शंकर अपने भक्तोंको भी गौएँ प्रदान करते

क्योंकि गौएँ समस्त तपस्वियोंसे बढ़कर हैं-

हैं। बाणासुरसे प्रसन्न होकर उन्होंने उसे बारह गौएँ दी थीं, जो समस्त सम्पत्तियोंकी शिरोमणि थीं। उषा-अनिरुद्धके विवाहमें बाणासुरने बहुत सारी दहेज-सामग्री

भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित की थी, परंतु भगवान् शंकरसे प्राप्त उन गौओंको उसने दहेजमें नहीं दिया था। भगवान् श्रीकृष्ण इस तथ्यको जानते थे, अत: उन्होंने उन गौओंकी माँग की, तब बाणासुरने भगवान् शंकरके कहनेपर उन्हें गौएँ समर्पित कर दीं। भगवान् शंकरकी गोभक्ति अद्भृत है, उन्होंने स्वयं

नीलवृषके रूपमें गोमाता सुरिभके गर्भसे अवतार लिया।

स्कन्दपुराणके नागर-खण्डमें इसकी कथा इस प्रकार आती है— एक बार भगवान् शंकरसे ब्रह्मतेजसम्पन्न ऋषियोंका कुछ अपराध हो गया, जिससे उनका सम्पूर्ण शरीर ब्रह्मतेजसे जलने लगा। इस शापानलसे त्रस्त होकर वे

कुछ अपराध हो गया, जिससे उनका सम्पूर्ण शरीर ब्रह्मतेजसे जलने लगा। इस शापानलसे त्रस्त होकर वे गोलोक गये और वहाँ गोमाता सुरिभका स्तवन करने लगे। शिवजीने कहा— सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्रों मात्रे नमो नमः॥

त्वं रसमयैर्भावैराप्यायसि भृतलम्।

देवानां च तथा संघान् पितृणामिप वै गणान्॥

न करते देनेवाली हो। सम्पूर्ण चराचर विश्वको तुम्हींने बल और गौएँ दी स्नेहका दान दिया है। देवि! तुम रुद्रोंकी माता, उषा- वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी बहन और सन्तोषमयी -सामग्री वाञ्छित देनेवाली हो। तुम्हीं धृति, तुष्टि, स्वाहा, स्वधा, शंकरसे ऋद्भि, सिद्धि, लक्ष्मी, धारणा, कीर्ति, मित, कान्ति,

हे अनघे! मैं प्रणत होकर तुम्हारी पूजा करता हूँ।
तुम विश्वदु:खहारिणी हो, मेरे प्रति प्रसन्न हो। हे
अमृतसम्भवे! ब्राह्मणोंके शापानलसे मेरा शरीर दग्ध
हुआ जा रहा है, तुम उसे शीतल करो।
इतना कहकर भगवान् शंकरने माता सुरिभकी
परिक्रमा की और उनकी देहमें प्रवेश कर गये। गोमाता

गोमातापर प्रभावी नहीं हुआ और भगवान् शंकरके शरीरकी जलन शान्त हो गयी। माता सुरभिने उन्हें अपने गर्भमें धारण कर लिया। इधर शिवजीके न होनेसे सारे जगत्में हाहाकार मच गया। तब देवताओंने स्तवन करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया और उनसे शिवजीका पता

पवित्र ब्राह्मणोंका ही दूसरा रूप हैं, अत: उनका शाप

अर्थात् सृष्टि, स्थिति और विनाश करनेवाली हे

माता! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। तुम रसमय भावोंसे

समस्त पृथ्वीतल, देवता और पितरोंको तृप्त करती हो।

रसभिज्ञ सभीसे तुम परिचित हो और मधुर स्वाद

लज्जा, महामाया, श्रद्धा और सर्वार्थसाधिनी हो।

लगाकर वे गोलोक पहुँच गये। वहाँ उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी 'नील' नामक सुरभीसुतको देखा। वे सब जान गये कि सुरभीसुतके रूपमें भगवान् शिव ही

िभाग ९१

िभाग ९१ संतवाणी— जीवनोपयोगी बातें 🛊 यदि कुछ माँगते हुए भगवानुकी भक्ति करोगे तो 🕯 विद्याहीन मनुष्य रूप एवं यौवनसे सम्पन्न तथा भगवान् उतना ही देंगे, जितना आपने माँगा है, परंतु यदि उच्चकुलीन होते हुए भी, विद्वानोंकी सभामें शोभा नहीं बिना माँगे (नि:स्वार्थ भावसे) भक्ति करोगे तो भगवान् पा सकता। इतना देंगे कि आपसे सँभाले नहीं सँभलेगा। 🛊 धनसे हीन लेकिन ज्ञानवान् मनुष्य कभी गरीब 🕏 ईश्वर हमें वह नहीं देता जो हमें अच्छा लगता नहीं है, लेकिन वह धनवान् जिसके पास ज्ञान नहीं है, है, अपितु वह देता है जो हमारे लिये अच्छा है। हर तरहसे गरीब है। 🕏 मनुष्यको केवल धर्म कमानेका प्रयत्न करना 🛊 यह निश्चित है कि जो हमारे सामने दूसरोंकी चाहिये; क्योंकि जहाँ धर्म (नारायण) है, वहाँ धन निन्दा करता है, वह दूसरोंके सामने हमारी निन्दा करेगा। (लक्ष्मी) तो स्वतः आ जाता है। इसलिये दूसरोंकी निन्दा और गलतियोंको सुननेमें अपना 🛊 जिसका प्रभुमें दुढ विश्वास है, उसके लिये समय नष्ट मत करो। ज्योतिष आदि शास्त्रका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि 🕏 सम्पत्ति, संतान और विद्या—इनकी प्राप्तिके उसके तो तीनों काल (वर्तमान, भूतकाल एवं भविष्य) बाद मनुष्यको सावधान रहना चाहिये; क्योंकि इनकी स्वयं भगवान् सँभालते हैं। प्राप्तिसे अहंकार बढ जाता है। 🕏 किसी अभावग्रस्तको देखकर हँसो मत; क्योंकि 🔹 अपनी अज्ञानताका अहसास होना ज्ञानकी दिशामें लक्ष्मी कभी स्थिर नहीं रहती। कुएँसे जल निकालनेवाले बढ़नेहेतु एक बड़ा कदम है। रहटके घटोंको देखो, जो खाली होते जाते हैं, वे भरते 🔹 उपकारसे बढ़कर कोई धर्म नहीं तथा अपकारसे जाते हैं तथा जो भरे हैं, वे खाली होते जाते हैं। बढकर कोई पाप नहीं। 🔹 अच्छा कार्य करनेवाले कई लोग मिल जायँगे 🛊 अभिमान मनुष्यको कभी उठने नहीं देता तथा पर बुरा कार्य न करनेवाले कम मिलेंगे। वास्तवमें करने स्वाभिमान मनुष्यको कभी गिरने नहीं देता। योग्य कामकी अपेक्षा निषिद्ध कामका त्याग करना 🛊 अधर्मसे मनुष्य पहले तो एक बार बढ़ता है और अपने छोटे-मोटे शत्रुओंपर धनके बलसे विजय भी प्राप्त ज्यादा श्रेष्ठ है। 🛊 जैसे सूर्यदेव उदयकाल और अस्तकाल दोनों ही कर लेता है, किंतु अन्तमें वह देह, धन, संतान और समय रक्तवर्ण रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्यको सुख-दु:ख परिवारसहित समुल नष्ट हो जाता है। और सम्पत्ति-विपत्तिमें एक-सा रहना चाहिये। 🔹 मोक्षप्राप्तिमें वर्ण, आश्रम एवं जातिकी प्रधानता 🕏 दुसरोंके दोष जानते हुए भी उन्हें अन्य व्यक्तियोंके बिलकुल नहीं है अपितृ सद्गुण, सदाचार, ईश्वर-भक्ति सामने प्रकट नहीं करना चाहिये। एवं ज्ञान ही प्रधान हैं। 🛊 संतानको सम्पत्तिके साथ संस्कार भी दीजिये; 🕏 पराये धनका लोभ न करना, मर्यादाको कभी भंग न होने देना, नीचके संगसे दूर रहना, विपत्तिमें धैर्य क्योंकि सुसंस्कारित संतान ही सम्पत्तिका सदुपयोग कर रखना तथा सम्पत्तिमें विनीत होना—ये सब प्रसन्नताके सकती है। निश्चित हेत् हैं। 🕯 जीवनमें आनेवाले दु:खको समस्या मत समझो बल्कि इसे जीवनकी तपस्या समझकर स्वीकार करो। 🛊 अधिक खर्चीली जीवन-शैली मनुष्योंको रुपयोंका दामात्तवराहितीके हिस्से तर्ज स्वरूपिक सिएड अविड एड दुरे हैं dharma | MADE Winter कि एक कि ने प्राप्त कि स्वरूप

साधनोपयोगी पत्र संख्या २] साधनोपयोगी पत्र हो गयी, तब तो सारा बखेड़ा ही तै हो गया; ऐसा न हुआ (१) दुःखोंसे छूटनेके उपाय तब भी जितना भजन हुआ, उतना तो हमारे कल्याणका प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मार्ग प्रशस्त हुआ ही। जितना रास्ता कटा, उतना ही अच्छा। मिला था। आपने पत्रमें अपनी आर्थिक, शारीरिक और एक बात और ध्यानमें रखिये। मानसिक स्थितिके बारेमें लिखा, सो सब पढा। आर्थिक जिन लोगोंके पास काफी धन है, ऋणकी तो कोई स्थिति अच्छी न रहनेके कारण चित्तमें अशान्ति होना बात ही नहीं, भोगके लिये प्रचुर सामग्री मौजूद है, उनके स्वाभाविक है। आजकलकी दुनियामें अर्थके बिना कोई चित्तमें भी शान्ति धनके होने-न-होनेसे सम्बन्ध नहीं रखती। काम नहीं सधता, बात-बातमें अर्थकी जरूरत होती है। शान्तिका सम्बन्ध चित्तकी वृत्तियोंसे है। जिसके मनमें ऐसी हालतमें अर्थका अभाव क्लेशदायक होगा ही। कामना, आसक्ति, ममता और अहंकार है, वह चाहे जितना परन्तु प्रारब्धके विधानके सामने हम क्या कर सकते हैं? धनी क्यों न हो, कभी शान्ति नहीं पा सकता। वह सदा यथासाध्य उपाय करना चाहिये, सो आप कर ही जला ही करता है। इसके विपरीत जो बिलकुल निर्धन है, रहे हैं। उद्योग करनेपर फल नहीं होता, तब सिवा सन्तोषके परन्तु भगवान्में विश्वासी है, भगवान्का भजन करता है सुखका और कोई साधन नहीं है। ऋणकी बात भी जरूर और भगवान्के प्रत्येक विधानमें मंगलमय भगवान्का हाथ बहुत संकट देनेवाली है। इसको उतारनेके लिये यथासाध्य देखकर अपना मंगल देखता है, वह महान्-से-महान् दु:खकी आप उद्योग करते ही हैं। ऋण होनेपर अनाप-शनाप खर्च हालतमें भी शान्त और सुखी रहता है। बलि राजाका करना या धन होनेपर भी न देनेका भाव नहीं होना चाहिये। राज्य हरण कर लेनेपर भगवान्से प्रह्लादने कहा था— और साधारण खर्चके बाद यदि कुछ बचे तो उसे ऋण-'भगवन्! आपने बड़ी दया की।' अतएव आपको विचार दाताओंको देना चाहिये, परंतु एक बात स्मरण रखनी चाहिये। करके आर्थिक स्थितिके कारण चित्तमें दु:ख नहीं करना चाहिये, भगवान्का विधान मानकर सन्तुष्ट रहना चाहिये। यदि साधन करनेपर भगवत्कृपासे भगवत्प्राप्ति हो गयी तो इसी ऋणसे नहीं—समस्त ऋणोंसे जीवको मुक्ति मिल और जहाँतक हो सके, उपार्जनकी शुद्ध चेष्टा करते हुए जाती है। अतएव यह कभी नहीं विचारना चाहिये कि पूरा कम खर्चमें काम चलाना चाहिये। सब दु:खोंके नाशके ऋण उतर जानेपर और स्त्री-पुत्रोंके भरण-पोषणके लिये लिये एकमात्र उपाय बतलाता हूँ। मनमें यह निश्चय करके कुछ संग्रह हो जानेपर या अच्छी कमायी होने लगनेपर ही कि 'हे भगवन्! मैं एकमात्र आपके ही शरण हूँ। आप ही भजन किया जायगा। प्रथम तो यह निश्चय नहीं कि तीनों मुझे दु:खोंसे बचायेंगे यह मुझको निश्चय है।' चलते-बातें पूरी होंगी ही। दूसरे यह भी पता नहीं कि यदि ये पूरी फिरते, उठते-बैठते मन-ही-मन सदा 'हरिः शरणम्' हो भी गयीं तो फिर उस समय भजन करनेका मन रहेगा मन्त्रका जप करते रहिये। यदि विश्वास और श्रद्धापूर्वक या नहीं। यह याद रखना चाहिये कि एक-एक अभावकी इसका जप किया जाय तो सारे संकट टल सकते हैं। इसके सिवा भागवतके आठवें स्कन्धके तीसरे अध्यायका रोज पूर्ति पचासों नये-नये अभावोंको उत्पन्न करनेवाली होती सबेरे आर्तभावसे पाठ कीजिये। इससे भी बहुत लाभ हो है। मन रहा भी और शरीर पहले छूट गया तो अपनेको क्या लाभ हुआ ? अतएव भजन तो हर हालतमें करना ही सकता है। चाहिये, साथ ही ऋण चुकाने तथा आजीविकाका साधन भगवान्की सुन्दर तसवीर सामने रखकर उनके एक-संग्रह करनेके लिये चेष्टा भी करते रहना चाहिये। भजनके एक अंगके ध्यानका अभ्यास कीजिये तथा श्वासके साथ साथ-साथ ऋण चुक गया तब तो दोनों काम हो गये, नहीं भगवानुके नामका जप करनेकी आदत डालिये। श्वासके तो भजन हुआ। भजनके प्रतापसे इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति आने-जानेमें जो शब्द होता है, उसपर लक्ष्य कीजिये।

भाग ९१ *********************** और धर्मके नामपर ही ईश्वर और धर्मकी हत्या करना जरा जोरसे श्वास लीजिये तो आवाज स्पष्ट सुनायी देगी। उस आवाजमें ऐसी भावना कीजिये कि यह 'राम-राम' शुरू कर दिया है। पता नहीं, इसका क्या नतीजा होगा! बोल रहा है। ऐसा करनेसे मन कुछ वशमें होगा। शरीर, ईश्वर एक हैं, धर्म उनकी प्राप्तिके रास्ते हैं। वे धर्म भोग सब क्षणभंगुर, विनाशी तथा दु:खरूप हैं—ऐसी भावना धर्म नहीं, जो ईश्वरप्राप्तिके रास्तेमें रोड़े अटकायें। सच्ची करके मानसिक पापोंको हटाइये। मानसिक पापोंके नाशके बात तो यह है कि एक ही भगवान्को हमलोग भिन्न लिये आर्तभावसे भगवानुसे प्रार्थना करनी चाहिये। शारीरिक नामोंसे पुजते हैं। हमारे श्रीकृष्ण ही आपके अल्लाह हैं। रोगनाशके लिये यथासाध्य ब्रह्मचर्यका पालन, खान-पानमें मजहबके नामों और देशकी सीमाओंके भेदसे न तो भगवान् अनेक हो जाते हैं और न अखण्ड आत्माके स्वरूपमें ही संयम रखते हुए साधारण आयुर्वेदिक दवा लेनी चाहिये। पेटकी वायुके नाशके लिये भोजनके पहले ग्रासके साथ अन्तर आ सकता है। यह तो मनुष्यकी हठधर्मी है, जो वह अपना अज्ञान ईश्वरपर लादकर ईश्वरको छोटे दायरेमें चार आनेभर हिंग्वाष्टक चूर्ण घीमें मिलाकर लेना चाहिये। भोजनके बाद लवणभास्कर चूर्ण ठण्डे जलके साथ लेना कैद करना चाहता है। भगवान् सबको सुमित दें। यही प्रार्थना है*****। शेष प्रभुकृपा।

चाहिये और धातु-क्षीणताके लिये आठ आनेभर आँवलेके चूर्णकी फंकी रातको सोते समय जलके साथ लेनी चाहिये। रोज तीन-चार मील घूमना चाहिये। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक साधन करनेसे भगवत्कृपासे आपकी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्थितिमें बहुत

धर्म और भगवान्

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र

कुछ उत्तम परिवर्तन हो सकता है। शेष प्रभुकृपा।

मिल गया था। मैं समयपर जवाब न दे सका। माफ

कीजियेगा। आप मुसलमान हैं, इसीलिये मेरे मनमें आपके प्रति मुहब्बत कम क्यों होती?

मुहब्बतसे, और इन हिंदू-मुसलमान नामोंसे क्या सरोकार ? लेकिन अफसोस तो यह है कि आज हम इस हालतपर पहुँच गये हैं कि एक-दूसरेपर सन्देह करने

लगे हैं और इसीसे ऐसे सवाल भी मनमें पैदा होते हैं। आपने इसलामका बड़ा ही सुन्दर अर्थ किया है। आपका यह अर्थ यदि भारतीय मुसलमान भाई जानते

आज जहाँ एक-दूसरेके गलेपर छूरी चलायी जाती है, वहाँ एक-दूसरेके हाथ परस्पर रक्षा करनेके लिये छत्र-

या मानते, उनके हृदयोंमें काश, यह अर्थ आ जाता तो

छायाकी तरह ऊपरको उठे होते, और फिर क्या मजाल कि कोई तीसरा हममें भेद उत्पन्न करके लडा सकता,

परन्तु आज तो जमाना ही बदल गया है। हमने ईश्वरके

(3) गम्भीरता या प्रसन्नता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। पत्र मिला, धन्यवाद! निवेदन यह है कि एक ऐसी भी आध्यात्मिक स्थिति होती है और वह अच्छी होती है, जिसमें अन्तरमें उदासी न

होनेपर भी चेहरेपर उदासी-सी मालूम होती है। यह वैराग्यकी एक अवस्था है, परंतु चेहरेकी उदासी और गम्भीरता ही आध्यात्मिक उन्नति या स्थितिकी पहचान नहीं है। गम्भीरता होनी चाहिये भीतर, इतनी कि जो किसी भी प्रकारसे किसी

भी बाह्य परिस्थितिमें चित्तको क्षुब्ध न होने दे। बाहर तो सदा प्रसन्नता और हँसी ही होनी चाहिये। समुद्रका अन्तस्तल कितना गम्भीर होता है, उसमें कभी बाढ़ आती ही नहीं, परंतु उसके वक्ष:स्थलपर असंख्य तरंगें नित्य-निरन्तर नाचती

रहती हैं—अठखेलियाँ करती रहती हैं। इसी प्रकार हृदय विशुद्ध, विकाररहित, स्थिर, गम्भीर और भगवत्संयोगयुक्त होना चाहिये और बाहर उनकी विविध लीलाओंको देख-

देखकर पल-पलमें परमानन्दमयी हँसीकी लहरें लहराती रहनी चाहिये। मुर्दे–सा मुर्झाया हुआ मुँह किस कामका ? जिसे देखते ही देखनेवालोंका भी हृदय हँस उठे, मुखकमल

खिल उठे, मुखमुद्रा तो ऐसी ही होनी चाहिये। इसका यह अर्थ भी नहीं कि विनोदके नामपर मर्यादारहित, अनर्गल, असत्य प्रलाप किया जाय। उसका

तो त्याग ही इष्ट है। शेष प्रभुकुपा।

व्रतोत्सव-पर्व

ज्येष्ठा अहोरात्र

संख्या २]

प्रतिपदा रात्रिमें ७। ४४ बजेतक

द्वितीया 😗 ८। ३५ बजेतक तृतीया 🕖 ९। ५१ बजेतक

चतुर्थी 🗥 ११। ३२ बजेतक 🛮 गुरु

पंचमी 🦙 १। ३१ बजेतक

षष्ठी 🔐 ३।३८ बजेतक

सप्तमी रात्रिशेष ५। ४२ बजेतक

अष्टमी प्रातः ७।३२ बजेतक

नवमी दिनमें ९।६ बजेतक

दशमी 🥠 १०।१० बजेतक

एकादशी 🗤 १०। ४७ बजेतक

त्रयोदशी १११०।२८ बजेतक रिव

प्रतिपदा प्रात: ६। ३२ बजेतक बुध

तृतीया रात्रिमें २। २१ बजेतक गुरु

चतुर्थी 😗 १२।० बजेतक | शुक्र

अष्टमी अहोरात्र

बुध

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

द्वादशी '' १०। ५३ बजेतक | शनि | धनिष्ठा '' २।४१ बजेतक | २५ 🕠

सं० २०७३, शक १९३८-३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

व्रतोत्सव-पर्व

तिथि नक्षत्र

दिनांक

स्वाती ११११। १० बजेतक १६ 🕠

विशाखा '' १।३८ बजेतक १७ ''

अनुराधा '' ४। १६ बजेतक १८ ''

पू० षा० ११ ११ । १७ बजेतक २२ 🕠

उ० षा० '' १२।५३ बजेतक | २३ ''

शतभिषा ११ २। ५० बजेतक | २६ 🕠

रेवती दिनमें १२। ४४ बजेतक र९ मार्च

अश्विनी ११११ । २४ बजेतक | ३० ११

भरणी ११९।५४ बजेतक

ज्येष्ठा प्रातः ६।५० बजेतक २०

मूल दिनमें ९।१२ बजेतक

श्रवण 😗 २।१ बजेतक

१९ ,,

२१ ,,

२४ "

,,

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि सोम | उ० फाल्गुनी सायं ५ । ४६ बजेतक | १३ मार्च

वसन्तोत्सव (होली)।

मंगल हस्त रात्रिमें ७। ९ बजेतक १४ " मीन-संक्रान्ति रात्रिमें ७।४५ बजे, खरमासारम्भ, वसन्तऋतु प्रारम्भ। चित्रा 😗 ८।५८ बजेतक १५ 🕠 भद्रा दिनमें ९। १२ बजेसे रात्रिमें ९। ५१ बजेतक, तुलाराशि दिनमें

८।३ बजेसे।

संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। २८ बजे।

वृश्चिकराशि रात्रिमें ७।१ बजेसे।

भद्रा रात्रिमें ३। ३८ बजेसे, मूल रात्रिमें ४। १६ बजेसे।

भद्रा दिनमें ४। ४० बजेतक, भानुसप्तमी।

भद्रा दिनमें १०। १० बजेतक।

पञ्चकारम्भ रात्रिमें २। २१ बजे।

धनुराशि प्रात: ६।५० बजेसे, सायन मेषराशिका सूर्य सायं ६।१६ बजेसे।

शुक्रास्त पश्चिममें रात्रिमें १०।२३ बजे, **मूल** दिनमें ९।१२ बजेतक। भद्रा रात्रिमें ९। ३९ बजेसे, मकरराशि सायं ५। ४१ बजेसे, शक-संवत् १९३९ प्रारम्भ।

कुम्भराशि रात्रिमें २। २१ बजेसे, पापमोचनी एकादशीवृत (सबका),

मेषराशि दिनमें १२।४४ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें १२।४४ बजे,

भद्रा दिनमें १।११ बजेसे रात्रिमें १२।० बजेतक, वृषराशि दिनमें ३।२९

बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीवत, रेवतीका सूर्य दिनमें २।२९ बजे।

चतुर्दशी ,, ९। ३३ बजेतक सोम पु० भा 🙌 २। ३१ बजेतक २७ 🕠 मीनराशि दिनमें ८। ३५ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या। अमावस्या 🗥 ८ । १३ बजेतक मिंगल उ० भा० 🗥 १ । ४७ बजेतक | २८ 🕠 भौमवती अमावस्या, मूल दिनमें १। ४७ बजेसे।

वासन्तिक नवरात्रारम्भ, 'साधारण' संवत्सर।

मत्स्यावतार, गणगौर, मूल दिनमें ११। २४ बजेतक।

भद्रा सायं ४।५२ बजेसे रात्रिमें ३।४८ बजेतक।

कर्कराशि रात्रिमें ८। ३० बजेसे, श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।

शनिप्रदोषव्रत, शुक्रोदय पूर्वमें दिनमें २। २ बजे। भद्रा दिनमें १०। २८ बजेसे रात्रिमें १०। १ बजेतक।

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष तिथि वार दिनांक मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि नक्षत्र

३१ "

१ अप्रैल

2 "

३ "

8 11

पंचमी गर।३६ बजेतक|शनि कृत्तिका 😗 ८। १५ बजेतक रोहिणी प्रात: ६। ३३ बजेतक

षष्ठी 😗 ७। ११ बजेतक रिव सप्तमी सायं ४।५२ बजेतक सोम

आर्द्रा रात्रिमें ३। २७ बजेतक पुनर्वसु 🗥 २।११ बजेतक

अष्टमी दिनमें २।४४ बजेतक मंगल नवमी ''१२।५१ बजेतक बुध

पुष्य 😗 १।१३ बजेतक

आश्लेषा 🕶 १२ । ३५ बजेतक

शुक्र मघा 😗 १२। २१ बजेतक

दशमी 😗 ११। १८ बजेतक 🛛 गुरु एकादशी 🗤 १०। ९ बजेतक

पू० फा० '' १२। ३६ बजेतक रवि उ० फा० ११ । २० बजेतक

द्वादशी 😗 ९। २३ बजेतक 🛮 शनि त्रयोदशी 🕶 ९।८ बजेतक चतुर्दशी 🗤 ९। २५ बजेतक

पूर्णिमा 😗 १०।१५ बजेतक मंगल वित्रा रात्रिशेष ४।२० बजेतक

सोम हस्त ११२।३६ बजेतक

4 11 **श्रीरामनवमीव्रत, मूल** रात्रिमें १। १३ बजेसे। ξ " **भद्रा** रात्रिमें १०। ४४ बजेसे, **सिंहराशि** दिनमें ११। १८ बजेसे। भद्रा दिनमें १०। ९ बजेतक, कामदा एकादशीव्रत (सबका), मूल 9 11 611

रात्रिमें १२। २१ बजेतक। शनि प्रदोषव्रत, वामनद्वादशी। 9 11 १0 11

मिथुनराशि सायं ५। ४५ बजेसे।

कन्याराशि प्रातः ६। ४६ बजे, श्रीमहावीर-जयन्ती। भद्रा दिनमें ९। २५ बजेसे रात्रिमें ९। ५० बजेतक, व्रत-पूर्णिमा। तुलाराशि दिनमें १०। ४० बजेसे, पूर्णिमा, श्रीहनुमत्-जयन्ती।

कृपानुभूति 'स्वप्नमें दिया महादेवने आदेश—जो साकार हुआ'

इस घटनाका सिलसिला तो लगभग चालीस वर्ष

पूर्वसे ही आरम्भ हो जाता है, जब हमारे समधीसाहब श्रीगोकुलचन्द शर्मा परिवारसहित हरिद्वार गये हुए थे। जिस दिन उनको नीलकण्ठमहादेवके दर्शन करने जाना था, उसी दिन प्रात: जगनेसे पहले उन्हें स्वप्न हुआ कि वे दर्शन करने जा रहे हैं, रास्तेमें उनके आगे-आगे तीन साध चले जा रहे हैं। थोडी दूर आगे जाकर उनमेंसे दो साधु क्रमश: दायीं एवं

बायीं दिशाको मुड़ते हुए अदृश्य हो जाते हैं, पर तीसरा साधु उनके सामने आकर खडा हो जाता है और कहता है—'तुम हमारे पीछे-पीछे क्यों चले आ रहे हो?' शर्माजीने कहा-वैसे ही महाराज! चरणधूलि मिल

४६

जाय, इस इच्छासे। साधने कहा—'अच्छा! तो एक काम करो।' तब उन्होंने कहा—'फरमाइये महाराज' (आज्ञा कीजिये)। तब एकाएक वे साधु चन्द्रमौलि, त्रिशुल-डमरू धारण किये भगवान् शिवशंकरके स्वरूपमें परिणत हो गये और बोले—'दीर्घकालसे

मेरे मन्दिरके ऊपर छत नहीं है। तुम उसकी छत डलवा दो।' इसके पश्चात् स्वप्न टूट गया, लेकिन वह स्वरूप उनकी आँखोंमें तथा वे शब्द उनके कानोंमें गुँजते रहे। तब अपने कारोबारकी व्यस्तताके चलते भी वे मन्दिरकी खोजमें लगे रहे। आठ वर्षतक वे इसी उधेड-बून और

छानबीनमें लगे रहे, परंतु उन्हें ऐसा मन्दिर कहीं नहीं मिल पा रहा था, जिसकी छत न हो। उपास्यके आदेशको भी नकारा नहीं जा सकता था। परेशान होकर उन्होंने प्रार्थना की— 'प्रभो ! आदेश दिया है तो मार्ग-दर्शन भी करो ।' तब एक विचित्र संयोग बना. जिसमें बीकानेरक्षेत्र (राजस्थान)-में रेलवे लाइनके

पास गंगाशहर रोडपर वह मन्दिर दर्शाया गया। तब बीकानेरमें उसी स्थानपर जाकर उन्होंने देखा—'गोपेश्वर महादेव' का मन्दिर, उस प्राचीन मन्दिरके विशाल परिसरमें अन्य कमरे-बरामदे आदि तो थे, परंतु जिस स्थानपर शिवजी स्वयं शिवलिंगके रूपमें विराजमान थे, उसकी छत नहीं थी।

केवल छोटी-छोटी चहारदीवारी ही थी। अनेक वर्षोंसे वहाँ खुलेमें ही विधिवत् पूजा-अर्चना होती चली आ रही थी। तब उन्होंने मन्दिरकी कमेटीके मुखिया लोगोंके सामने अपना उद्देश्य रखा, परंतु वे लोग उनसे सहमत नहीं हए: क्योंकि चिरकालसे वहाँके लोगोंमें यह धारणा थी कि जो

कोई इस मन्दिरकी छत बनवाता है, वह नष्ट हो जाता है

अथवा छत गिर जाती है। जिस कारण राजस्थानके राजा-

विचारधाराकी अड्चनसे उन्हें बहुत प्रयत्न करनेपर भी छत डलवानेकी आज्ञा नहीं मिली। अन्तमें शर्माजी श्रीगंगानगर (राजस्थान) गये, वहाँ

अपने मित्र श्रीराधेशामजीसे मिले, जो उस समय तत्कालीन सरकारमें विधायक थे, तब श्रीराधेशामजीने मन्दिर ट्रस्टको विश्वास दिलाया कि ये कोई करोडपति व्यक्ति नहीं हैं और न ही इसमें इनका कोई अपना स्वार्थ है, ऐसा होता तो ये

इतनी दूर अनिभज्ञ स्थानकी बजाय अपने प्रान्त हरियाणा अथवा निवास चरखी दादरीमें ही क्यों न मन्दिर बनवा लेते ? इन्हें भगवान शिवका आदेश पालन करनेकी आज्ञा प्रदान करनी चाहिये, तब वहाँ उपस्थित स्थानीय सज्जन

श्रीपुरोहितजीने भी उनका अनुमोदन किया। तत्पश्चात् शर्माजीने मन्दिरकी हानि-लाभका दायित्व अपने ऊपर लेते हुए छत बनवानेकी अनुमति प्राप्त कर ली।

तदुपरान्त मन्दिरपर अति भव्य गगनचुम्बी गुम्बद बनकर शोभायमान हो गया। गुम्बद (छत)-निर्माणकी सम्पन्नताके उपलक्ष्यमें सन् १९८३ ई० के जुलाई मास (श्रावणमास)-में उद्घाटन-समारोहका आयोजन किया

देखते हुए रात्रिके अन्धकारमें लोग कॉॅंप रहे थे कि कहीं इसका कारण मन्दिरकी छत डालना तो नहीं ? कुछ लोग शर्माजीको कोस रहे थे; क्योंकि उन्होंने उन लोगोंकी मान्यताके विरुद्ध कार्य किया था। जो भी हो, छत ढह जानेकी प्रबल आशंका थी। बवण्डर थमा, दिन निकला, लोगोंने बाहर निकलकर देखा, दुकानोंकी छतें उड गयी

गया। जिस दिन उद्घाटन होना था, उससे पहली रात्रिको

बीकानेरमें प्रचण्ड तूफान आ गया। तूफानकी भयंकरताको

थीं, पेड़ ढह गये थे, परंतु महादेवके मन्दिरका मनोहर

गुम्बद सुनहरे कलशका मुकुट पहने मानो कह रहा था— 'मैं गिरा नहीं हूँ, वे प्रलयंकार शिव तो रातको मुझपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगाने आये थे।' इस समारोहमें शर्माजीके निकट सम्बन्धियोंमें मैं भी सम्मिलित थी। मैंने सब अपनी आँखोंसे देखा, सबसे विचित्र दुश्य तो यह था कि उससे पहले दिन गुम्बदपर अन्तिम

चित्रकारी करके जो कारीगर देर शामको नीचे उतरे थे, वे एक खाली बाल्टी एवं रंगकी कूची ऊपर छोड़ आये थे, वह भी गिरी नहीं, ज्यों-की-त्यों पडी थी। ईश्वरकी सत्ताका पार किसने पाया है? वह कब,

किससे, क्यों और क्या करवाता है, यह ईश्वर ही जानता

महानियुपीडेला जाइराजेला डाइएए हार्ची स्कृडरालेखेड संसुंजुरुय haहै ha चन्द्र लाया छाटा HOVE BY Avinash/Sha

पढो, समझो और करो संख्या २] पढ़ो, समझो और करो ब्रज अकादमीके अधिष्ठाताकी तरह राजस्थानसरकारद्वारा (१) आँखों देखा चमत्कार वृन्दावनमें दिये अशोकमहलमें विराजते थे। दिरद्र गृहस्थसे में स्वयं एलोपैथीका प्रशिक्षित रजिस्टर्ड चिकित्सक लेकर राज्यपाल और राष्ट्रपतितक महाराजजीके सम्पर्कमें हूँ। पिछले बीस वर्षींसे कुष्ठकी बहुऔषधि उपचार-रहते थे और उनके कृपापात्र थे। जरूरतमन्द साधकों, प्रणाली एवं कई जिलोंकी कुष्ठनियन्त्रण इकाईका प्रभारी जिज्ञासुओंके लिये तो महाराजजी अघोषित भगवान् ही रहा हैं। थे। उन अपार करुणावान् सिद्ध पुरुषकी सेवा और आधुनिक वैज्ञानिक तथ्योंके अनुसार कुष्ठ एक सिन्निधमें मुझे कई अघटन घटनाएँ घटित होते देखनेका जीवाणु-जन्य रोग है। यह माइको बैक्टीरियम लेप्री सौभाग्य मिला, उनमेंसे एक घटना इस प्रकार है— नामक जीवाणुसे होता है। यह रोग शरीरपर देहके रंगसे एक बार दक्षिणके एक संन्यासी अकादमी पधारे, फीके दागसे प्रारम्भ होकर तन्त्रिकाओंको नुकसान उनके कृपालु गुरुने उन्हें अनन्तशयनम् स्वामी नाम दिया था। दैववशात् उन्हें कुष्ठ हुआ था, हाथोंकी दसों पहुँचाने, हाथ-पैरोंकी अंगुलियोंके संवेदनशील हो जाने, लगातार चोट लगने, जल जाने, कट जानेसे हाथ-पैरोंमें अंगुलियाँ गल गयी थीं, चेहरा भी विकृत हो गया था। आयी स्थायी विकृतियों, नाकके बैठ जाने, आँखोंकी श्रीमहाराजने मुझे दिखाकर उपचारका आदेश दिया। भौहोंके उड़ जाने आदिके कारण बेहद कुरूप-रूपमें बहुऔषधि प्रणालीका उपचार सहज उपलब्ध था, पर प्रकट होता है। शरीरपर धब्बोंकी संख्या और रोगग्रस्त स्थायी विकृतियोंका तो कोई उपचार न था—सिवा तन्त्रिकाओंकी संख्याके आधारपर ही इसका वर्गीकरण महँगी और समय-साध्य कई बारमें की जानेवाली किया जाता है एवं उपचार, डोज तथा अवधि तय की प्लास्टिक सर्जरीके, जिसके लिये वे स्वयं भी सहमत न जाती है। उपचार बेहद प्रभावशाली, शत-प्रतिशत थे, पर आत्मग्लानि एवं सामाजिक प्रताड्नासे अत्यन्त सफल, सहज, सरल, नि:शुल्क उपलब्ध है—यह है इस दुखी होकर केवल आत्मघातकी बात ही सोचते थे। रोगका वैज्ञानिक चिकित्सकीय पक्ष। यह संक्रामक भी और बस, तभी श्रीमहाराजजीका आदेश हुआ, नहीं है और संसर्गसे नहीं होता। जिसपर नये लोग, विज्ञान कभी विश्वास ही नहीं करेगा। इसका दूसरा पक्ष है-पापकी, पूर्वजन्मोंसे जुड़े महाराजजीने वाराणसीके अपने एक भक्तके नाम पत्र अपराधोंकी धार्मिक अवधारणा। उसीके कारण भ्रम, लिखकर एक सेवकके साथ अनन्तशयनम् स्वामीको भय, अन्धविश्वास, आत्मग्लानि, सामाजिक बहिष्कार, वाराणसी भेज दिया। उन्हें छ: माहतक वाराणसीमें घृणा, उपेक्षा, सम्बन्ध-विच्छेद, आत्मघात सब जुड़ा है। रहकर प्रतिदिन तीन बार ब्रह्मवारि जाह्नवीमें स्नान, विश्वनाथदर्शन और २१-२१-२१ बेलपत्र खानेका इसके विरुद्ध अनेक प्रामाणिक प्रतिष्ठित समाजसेवी संस्थानोंके सहयोगसे मैंने स्वयं देशके सुदूर आदिवासी आदेश दिया। साथ ही अन्य कोई औषधि न लेनेका घूमन्त् क्षेत्रोंमें भय-भ्रम-निवारण शिविर-त्रिसंवाद निषेधात्मक आदेश भी दिया। (पीड़ित-सेवाप्रदाता-समाज) आयोजित किये हैं। मैं शपथपूर्वक इस बातका साक्षी हूँ कि छ: माह पर जो कुछ मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है, बाद वृन्दावन लौटे अनन्तशयनम् स्वामी सर्वांगसुन्दर थे उसे कैसे नकार दूँ! उन दिनों (सन् १९७१—७४ ई०)-और उनपर कुष्ठकी विकृतियोंका कोई निशानतक शेष में वृन्दावनभूषण परमरसिक विरक्तश्री श्रीपादजीमहाराज, न था, मैं स्वयं विश्वास नहीं कर सकता था। मेरा प्रशिक्षण

भाग ९१ और शिक्षण सब नकारता था, पर आँखोंमें अंगुली हाथ बढ़ाकर दवा ले ली। उसके चेहरेपर सन्तोष छलक आया। उसने कहा—'हाँ, ठीक है। अब मैं जाता हूँ।' डालनेवाला यह तथ्य मेरे ज्ञानसे परे था! प्रत्यक्षको हाथमें दवा थामे लड़केने सदाके लिये आँखें बन्द कर क्या प्रमाण! स्वयं स्वामी अनन्तशयनम् मेरे साथ श्रीमहाराजके आदेशसे लीला-पुरुषोत्तम, सर्वसमर्थ, नटनागर लीं। अवाक् खड़ा पिता पहले कहे हुए उसके शब्दोंका श्रीराधावल्लभजीकी आरतीमें मुझसे सटे खड़े थे। जय सामंजस्य बिठाता रहा, उसे समझनेका प्रयत्न करता जाह्नवी, जय विश्वनाथ!—नारायण तिवारी वाशिष्ठ रहा। (२) क्या जीवनके सब रिश्ते लेन-देनका हिसाबमात्र लेन-देन ही नहीं हैं? - डॉ० अरुणा 'अनु' यह घटना लगभग चालीस वर्ष पूर्व मोतिहारी, (3) पूर्वी चम्पारण (बिहार)-की है। गिरावटके समयमें भी ईमानदारी वैसे तो जीवनमें ढेर सारे बुरे अनुभवोंके साथ एक गरीब मास्टर थे। बहुत तंगीमें उनका जीवन बीत रहा था। स्कूलकी थोड़ी-सी तनख्वाह। चार अच्छे अनुभव भी होते रहते हैं, लेकिन कुछ अनुभव ऐसे बच्चोंके साथ उनका गुजर-बसर बहुत मुश्किलसे हो पा होते हैं, जो भूले नहीं जा सकते और उन्हें भूला जाना भी नहीं चाहिये। ऐसा ही एक अनुभव प्रस्तुत है— रहा था। मैं आयुध निर्माणी अम्बरनाथ, महाराष्ट्रमें कार्यरत एक दिन उनका बडा बेटा बीमार हो गया। मास्टर हूँ। एक दिन (मई २०१६ का दूसरा सप्ताह था) गेटसे साहब उसे अस्पताल ले गये, दवा दिलवायी। स्थिति ठीक हुई तो उसे घर ले आये। घर आते ही उसने अन्दर अपने कार्यालय जाते समय रास्तेमें एक समवयस्क कहा-बाबूजी! मेरे बाकीके रुपये भी वापस कर दो न! स्त्री कर्मचारीने मुझे रोककर ललितासिंह नामक स्त्रीके पिताने पूछा—कैसे रुपये? लड़का—मेरे वही १५० बारेमें पूछा। मैंने उसे बताया कि मेरे सिवा सिंह सरनेमकी कोई स्त्री निर्माणीमें नहीं है। मैंने पूछताछका रुपये, जो बाकी हैं, दे दो न? अब मैं जाऊँगा। पिता—पैसे-रुपये कहाँ हैं मेरे पास? कारण जानना चाहा तो पता चला साथमें खड़े लड़केको लडका—'ये घडी है न आपके पास। इसे ही केनरा बैंक, ईस्टेट शाखाके सामने एक ए० टी० एम० बेंचकर मेरे पैसे दे दो? अब कबतक इन्तजार करता कार्ड मिला है, जिसके साथ पर्चीमें पिननम्बर भी है। रहूँ ? अपना बकाया लेकर मैं जाऊँगा न।' मैंने कहा कि रक्षा-मन्त्रालयकी दूसरी निर्माणी बात पिताकी कुछ समझमें नहीं आयी। उन्हें लगा, एम०टी०पी०एफ० जो कि बगलमें है; में यह महिला हो सकती है। मैं पूछताछ करूँगी, किंतु तुम भी थोडा ध्यान बीमारीसे बच्चा दुर्बल हो गया है और ऐसे ही अनर्गल कुछ भी बड़बड़ा रहा है। रखना। वह लड़का लैब अनुभागमें परीक्षक पदपर था। डेढ़-दो वर्ष पूर्व ऐसे कई लड़के विभिन्न पदोंपर नियुक्त कुछ ही दिनों बाद बच्चेकी तबियत पुन: बिगड़ने लगी। उसे वापस अस्पताल लाना पड़ा। डॉक्टरने दवा हुए थे, जिन्हें हम लोग अभीतक ठीकसे पहचान भी लिखी। दवा खरीदनेके लिये इस बार मास्टर साहबके नहीं पाये हैं। पास बिलकुल पैसे नहीं थे। मजबूरन उन्हें अपनी घड़ी मैंने कार्यालय पहुँचकर एम०टी०पी०एफ० के बेंचनी पड़ी। दवा १५० रुपयेकी आयी। एक्सचेंज और कर्मचारी स्टॉफसे सम्बन्धित अनुभागोंमें जब वे दवा लेकर बच्चेके पास गये, तब लडकेने पूछताछ किया तो ललितासिंहका पता चल गया। उस

पढो, समझो और करो संख्या २] कार्यालयके जो सज्जन मुझे फोनपर मिले, उन्हें उस तब अँगूठी मिल जायगी। मेरा बेटा जब अगले दिन बरेली लड़केसे पहले ही सूचना मिल चुकी थी। बादमें मैं यह गया, तब वे टी॰टी॰ई॰ महोदय अँगूठी लेकर ट्रेनके घटना भूल गयी। शायद तीसरे दिन वह लड़का दिखा कोचमें दरवाजेपर खडे थे तथा उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक वह तो मुझे फिर यह घटना याद आ गयी। पूछनेपर पता अँगूठी मेरे बेटेको दे दी। उन महोदयकी कर्तव्यनिष्ठा चला कि ललितासिंहने उसी दिन आकर ए० टी० एम० और ईमानदारी स्तुत्य है। मेरा पूरा परिवार उनकी कार्ड ले लिया था। उनके खातेमें ७० हजारसे ऊपर मंगलकामना करता हुआ भगवान्से उनके स्वस्थ एवं समृद्ध जीवनके लिये प्रार्थना करता है। कलियुगमें ऐसे रुपये जमा थे। वे खुशीसे रो पड़ी थीं। मुझे आज भी यह सोचकर आश्चर्य होता है कि महापुरुष धन्य एवं विरले हैं। - प्रेमशंकर मिश्रा इस गिरावटके समयमें जबकि लोग दूसरेका पैसा-(4) सम्पत्ति हड़पनेको तैयार बैठे हैं; उस लड़केने निर्लिप्तभावसे कर्जका भय बात पहलेकी है। एक बार हीरालाल नामक एक ए० टी० एम० कार्ड वापस कर दिया।—सुश्री उर्मिलासिंह किसान आया और मुझसे पूछने लगा—'तुम सागरमलजीके (8) अनूठी ईमानदारी लड़के हो क्या?' मेरे 'हाँ' कहनेपर वह सौ रुपये इस घोर कलिकालमें आज जहाँ मानव बेईमानी निकालकर देने लगा और बोला—'बहुत दिन हुए मैं एवं पराये धनको चोरी एवं अन्यायपूर्वक हड्पनेमें लगा तुम्हारे पिताजीसे एक सौ रुपये उधार ले गया था। उस समय तुम बहुत छोटे थे। अबतक मैं वे रुपये नहीं लौटा हुआ है, वहीं यह घटना मानव-समाजके समक्ष ईमानदारीका अद्भुत उदाहरण है। यह घटना ७ जून, २०१५ ई० की सका। अब मेरे पास रुपये जुटे हैं, तब लेकर आया हूँ।' है। मेरा पुत्र जूनकी छुट्टीमें अपने परिवारके साथ मैं उसकी ओर देखता रह गया। तब उसने फिर कहा-देहरादूनसे जनता एक्सप्रेससे लौट रहा था। उसको बरेली 'मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ। मुझे कर्जसे मुक्त कर दो। मैं ब्याज नहीं दे सकूँगा। किसी तरह बड़ी कठिनतासे जंक्शनपर उतरना था। सारा सामान उतारकर सब लोग रुपये इकट्ठे कर पाया हूँ। मुझे कर्जका बड़ा भय है, स्टेशनपर उतर गये, जल्दीबाजीमें मेरे पुत्रकी सोनेकी अँगूठी अंगुलीसे निकलकर ए०सी० कोचमें कहीं गिर बाबू!' यों कहकर वह बार-बार हाथ-पैर जोड़ने लगा। मैंने सोचा कितना ईमानदार और कर्जसे डरनेवाला गयी, परंतु उसे इसका पता नहीं चला। वह स्टेशनपर Waiting room (वेटिंग रूम)-में ठहरने चला गया, तब है यह बूढ़ा किसान। बड़े-बड़े लोग भी आज कानूनसे बचकर रुपये हजम कर जाते हैं। मैंने चाचाजीसे बिना बादमें पता चला कि अँगूठी गिर गयी है। मेरे पुत्रने अनुमान लगाया कि अँगूठी ट्रेनके कोचमें ही गिर गयी पूछे ही रुपये ले लिये तथा उससे कह दिया-'तुम है, तबतक ट्रेन जा चुकी थी। मेरे बेटेने इस सम्बन्धमें कर्जसे मुक्त हो गये।' वह प्रसन्न होकर चला गया। स्टेशनमास्टरसे बात की, जो कि एक सज्जन व्यक्ति थे, ये रुपये लगभग पचीस वर्ष पहलेके थे। हमारे उन्होंने बताया कि अँगूठी मिलना मुश्किल है, फिर भी पास कोई भी हिसाब नहीं था। यहाँतक कि चाचाजीको टी॰टी॰ई॰ से बात करके देखते हैं। स्टेशनमास्टरने ट्रेनके भी याद नहीं था। ड्राइवरसे बात की तथा ड्राइवरने कोचके टी०टी०ई० किसानकी इस ईमानदारीको देखकर भगवान्से महोदयसे बात की तो उन्होंने बताया कि अँगूठी उनके यही प्रार्थना की जाती है कि हम सबको भगवान् ऐसी पास है तथा अगले दिन जब वह ट्रेन लेकर बरेली पहुँचेंगे ही सद्बुद्धि दें। -- हरीराम केडिया

िभाग ९१ मनन करने योग्य सिद्धिका आधार—श्रद्धा प्राचीन समयकी बात है। सिंहकेतु नामक एक स्त्रीने उसे चिन्तित देखकर कहा-'नाथ! डिरये पंचालदेशीय राजकुमार अपने सेवकोंको साथ लेकर एक मत। एक उपाय है। यह घर तो पुराना हो ही गया है। दिन वनमें शिकार खेलने गया। उसके सेवकोंमेंसे एक मैं इसमें आग लगाकर उसीमें प्रवेश कर जाती हूँ। इससे शबरको शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूमते एक टूटा-आपकी पूजाके निमित्त पर्याप्त चिताभस्म तैयार हो फूटा शिवालय दीख पड़ा। उसके चबूतरेपर एक जायगी।' बहुत वाद-विवादके बाद शबर भी उसके शिवलिंग पड़ा था, जो टूटकर जलहरीसे सर्वथा अलग प्रस्तावसे सहमत हो गया। शबरीने स्वामीकी आज्ञा हो गया था। शबरने उसे मूर्तिमान् सौभाग्यकी तरह उठा पाकर स्नान किया और उस घरमें आग लगाकर लिया। वह राजकुमारके पास पहुँचा और विनयपूर्वक अग्निकी तीन बार परिक्रमा की, पतिको नमस्कार किया और सदाशिव भगवान्का हृदयमें ध्यान करती हुई उसे शिवलिंग दिखलाकर कहने लगा—'प्रभो! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिंग है! आप यदि कृपापूर्वक मुझे अग्निमें घुस गयी। वह क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी। पूजाकी विधि बता दें तो मैं नित्य इसकी पूजा किया फिर शबरने उस भस्मसे भगवान् भूतनाथकी पूजा की। करूँ।' शबरको कोई विषाद तो था नहीं। स्वभाववशात् पुजाके बाद वह प्रसाद देनेके लिये अपनी स्त्रीको

निषादके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने प्रेमपूर्वक पूजाकी विधि बतला दी। षोडशोपचार पूजनके अतिरिक्त पुकारने लगा। स्मरण करते ही वह स्त्री तुरंत आकर उसने चिताभस्म चढानेकी बात भी बतलायी। अब वह शबर प्रतिदिन उस शिवलिंगको स्नान कराकर चन्दन, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, पुष्प, फल, धूप, दीप, नृत्य, यह मकान तो सब जल गये थे, फिर यह सब कैसे गीत, वाद्यके द्वारा भगवान् महेश्वरका पूजन करने लगा। हुआ?' वह प्रतिदिन चिताभस्म भी अवश्य भेंट करता। तत्पश्चात् वह स्वयं प्रसाद ग्रहण करता। इस प्रकार वह श्रद्धाल् जैसे मैं जलमें घुसी हूँ। आधे क्षणतक तो प्रगाढ़ निद्रा-शबर पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी आराधनामें सी विदित हुई और अब जगी हूँ। जगनेपर देखती हूँ

तल्लीन हो गया।

एक दिन वह शबर पूजाके लिये बैठा तो देखता है कि पात्रमें चिताभस्म तिनक भी शेष नहीं है। उसने बड़े प्रयत्नसे इधर-उधर ढूँढ़ा, पर उसे कहीं भी

तो यह घर भी पूर्ववत् खड़ा है। अब प्रसादके लिये यहाँ आयी हूँ।' निषाद-दम्पती इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि उनके सामने एक दिव्य विमान आ गया। उसपर भगवानुके चार गण थे। उन्होंने ज्यों ही उन्हें स्पर्श किया

शबरीने कहा—'आगमें मैं घुसी तो मुझे लगा कि

खड़ी हो गयी। अब शबरको उसके जलनेकी बात याद

आयी। आश्चर्यचिकत होकर उसने पूछा कि 'तुम और

चिताभस्म नहीं मिली। अन्तमें उसने स्थिति पत्नीसे व्यक्त और विमानपर बैठाया, उनके शरीर दिव्य हो गये। की। साथ ही उसने यह भी कहा कि 'यदि चिताभस्म नहीं मिलता तो पूजाके बिना मैं अब क्षणभर भी जीवित वास्तवमें श्रद्धायुक्त भगवदाराधनाका ऐसा ही माहात्म्य नहीं रह सकता।' Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

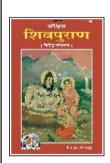
'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१७ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१७ ई० का विशेषाङ्क 'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंको वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रिजस्ट्रीसे पुन: मँगवानेकी कृपा करेंगे। वी०पी०पी०से पुन: मँगवाने-हेतु अनुरोध-पत्र भेजना चाहिये।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिके विवरणसिहत हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजनहेतु पत्र भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन



संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 1468, विशिष्ट संस्करण, सिजल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, मिहमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२५०, सामान्य संस्करण (कोड 789) मूल्य ₹२००, (कोड 1286) मूल्य ₹२०० गुजराती, (कोड 975) मूल्य ₹२०० तेलुगु, (कोड 1937) बँगला मूल्य ₹१६०, (कोड 1926) मूल्य ₹१७५ कन्नड़, (कोड 2043) मूल्य ₹२०० तिमल भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹		
2020	शिवमहापुराण -मूलमात्रम्	२५०	1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०	228	शिवचालीसा -पॉकेट साइज	3		
1985	लिङ्गमहापुराण -सटीक	200	204	ॐ नमः शिवाय "	२५	1185	शिवचालीसा-लघु	2		
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर -सानुवाद	30	1343	हर हर महादेव "	२५	1599	श्रीशिवसहस्र नामावलि	6		
1899	श्रावणमास-माहात्म्य 🕖	32	1367	श्रीसत्यनारायणव्रतकथा	१२	230	अमोघ शिवकवच	3		
1954	शिव-स्मरण	१०	563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	ષ	1627	रुद्राष्टाध्यायी -सानुवाद	30		
							<u>'</u>			

बहुत दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें—अब उपलब्ध

संत-अङ्क (कोड 627)—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओं ऐसे आदर्श जीवन-चिरत्र हैं। मूल्य ₹१८०

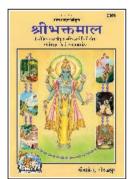
अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। ग्रन्थके प्रारम्भमें आये हुए शताधिक प्रमाणोंको हिन्दी-अनुवादके साथ दिया गया है। ग्रन्थमें मूल प्रयोग-भाग संस्कृतमें तथा प्रक्रिया-सम्बन्धी सभी निर्देश हिन्दीमें दिये गये हैं। मूल्य ₹१३०

श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार (कोड 1318) मूल-रोमन-वर्णान्तर, अंग्रेजी अनुवाद। मूल्य ₹३०० व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपर—२७३००५



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध



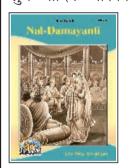
श्रीभक्तमाल (कोड 2066)—भक्तमाल परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, विशेषकर किलयुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। सन् २०१३ ई० में कल्याणके विशेषांकके रूपमें भक्तमाल-अंकका प्रकाशन हुआ। विशेषांककी पृष्ठ-संख्या सीमित होनेके कारण उसमें भक्तोंकी कथाको अत्यन्त संक्षेपमें ही देना पड़ा। अब विस्तृत व्याख्याके साथ भक्तमालको ग्रन्थरूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है पाठक-पाठिकागण इस भक्तमालको पढ़कर लाभान्वित होंगे। मृल्य ₹२३०

कल्याण विशेषांकके रूपमें प्रकाशित भक्तमाल-अंक भी उपलब्ध (कोड 1947)। मूल्य ₹१३०

आदर्श बाल-कहानियाँ (कोड 2067)—चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् परशुराम, सत्यकाम जाबाल, निचकेता, भक्त हनुमान्, भीष्मिपतामह, कबीर, नानकदेव आदिके विषयमें सरल भाषामें जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹ २५

आदर्श बाल-कथाएँ (कोड 2068)—चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें रामायण एवं महाभारतको कथाके रूपमें एवं श्रीकृष्ण, श्रवण कुमार, प्रह्लाद, ध्रव आदिके चरित्रका वर्णन अत्यन्त सरल भाषामें किया गया है। मुल्य ₹ २५





Nal-Damayanti (Code 2064)—['नल-दमयन्ती'का अंग्रेजी अनुवाद] पुस्तकाकार—महाभारतके आधारपर ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखा गया नल-दमयन्तीके चिरत्रका मनोहर चित्रण। मूल्य ₹5 (कोड 273) हिन्दी, (कोड 645) तिमल, (कोड 916) तेलुगु, (कोड 836) कन्नड़, (कोड 1059) गुजराती, (कोड 1203) ओड़िआ और (कोड 1385) मराठीमें भी उपलब्ध।

Ideal Women (Code 2063)—['आदर्श देवियाँ'का अंग्रेजी अनुवाद]— पुस्तकाकार—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा पराम्बा सीता, देवी

कुन्ती, द्रौपदी, गान्धारीके जीवन-चिरत्रका अनूठा चित्रण, जिसमें उनके पित-प्रेम, पित-सेवा, त्याग, सिहष्णुता, निर्भयता आदि गुणोंके विषयमें ऐसा मनोहर वर्णन किया गया है जिसे पढ़कर आँखोंसे प्रेमाश्रु छलक पड़े। मूल्य ₹8 (कोड 291) हिन्दी, (कोड 1221) ओड़िआ भी।

महाभारत कथा (कोड 2061) मराठी—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णकी महानताको दर्शाते हुए महाभारतकी कुछ प्रमुख कथाएँ सरल मराठी भाषामें वर्णित हैं। मृल्य ₹३५

श्रीघ्र प्रकाश्य-नवीन प्रकाशन—श्रीसकळसंतगाथा (कोड 2062) मराठी—प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीज्ञानेश्वर, श्रीनिवृत्तिनाथ, श्रीसोपानदेव, श्रीमुक्ताबाई, श्रीचोखामेळा, श्रीएकनाथ महाराज, श्रीनिळोब महाराज आदि महाराष्ट्रके कुछ संतोंकी वाणियाँ प्रकाशित की गयी हैं। श्रीतुकाराम गाथा एवं नामदेवांची गाथा अलगसे प्रकाशित है। व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५